इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष १०-११ अंक ४,१ पौष/माघ मास कलियुगाब्द ५११६-२० जनवरी-अप्रैल २०१८

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
इरविन खन्ना
चेतराम गर्ग

सम्पादक :
डॉ. राकेश कुमार शर्मा

सह सम्पादक
डॉ. विवेक शर्मा

व्यवस्थापक
प्यार चन्द परमार

सम्पादन सहयोग :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
रवि ठाकुर

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव-नेरी, डाकघर-खगल
जिला-हमीरपुर-१७७००१(हि०प्र०)
दूरभाष : ०६४१८४-८५४१५

मूल्यः
प्रति अंक - १५.०० रुपये
वार्षिक - ६०.०० रुपये
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

संदेश

सम्पादकीय

संस्मरण

लोक जीवन साधक	चेतराम गर्ग
उनके ध्येय पथ पर चलना होगा	डॉ. सूरत ठाकुर
विद्याचन्द और उनका कार्यक्षेत्र	डॉ. वेद प्रकाश अग्नि
जैसा नाम वैसा काम	किस्मत कुमार
उच्च आदर्श विद्वान	डॉ. विजय मोहन कुमार पुरी
मेरे प्रेरणा स्रोत	बीरबल शर्मा
स्वदेशे पूज्यते राजा...	डॉ. ओम दत सरोच
शब्दब्रह्म के साधक	डॉ. ओम प्रकाश शर्मा
यादें	श्रीनिवास जोशी
अध्यात्म एवं विज्ञान के संगम	डॉ. भाग चन्द चौहान
व्यक्ति से व्यक्तित्व का सफर	रमेश जसरोटिया
दूरदर्शी व्यक्तित्व	अश्वनी कुमार शर्मा
विद्याचन्द के अन्तिम शब्द	डॉ. कर्म सिंह
एक शुद्ध चेतन व्यक्तित्व	प्यार चन्द परमार
संस्कृत और संस्कृति के पुजारी	डॉ. सीता राम ठाकुर
लोक गाथाओं के प्रमाण पुरुष	डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय
जैसा मैंने जाना	अनुराग पराशर
हमेशा यादों के रहेंगे	कुलदीप गुलेरिया
दो शब्द	दीपक शर्मा

उत्कृष्ट भावना का प्रतीक	भूमिदत शर्मा
सहज एवं समावेशी व्यक्तित्व	मुरारी शर्मा
आह! विद्याचन्द ठाकुर	छेरिंग दोरजे
अखण्ड प्रेरणा पुंज	डॉ. विकास शर्मा
एक महान लेखक के सम्पादकीय	डॉ. विवेक शर्मा

हस्तलिखित पत्र

कविता

आलेख

भारतीय मनीषा की पहचान

त्रिगर्त सम्बन्धी लोक साहित्य

मनु महाराजा का घर मनाली

विषुव का त्यौहार : विशु-बसोआ

एक दुर्गम गांव की यात्रा

चित्रावली

सम्पादकीय

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः

जो व्यक्ति लोकतत्व का प्रत्यक्ष दर्शन करता है, वही दर्शन की सर्वज्ञता प्राप्त कर सकता है। डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी का चिन्तन व मनन इस ध्येय वाक्य के अन्तर्गत ही दृष्टिगत होता है। ठाकुर जी जिस परिवेश में पले–बढ़े और बड़े हुए जीवनपर्यन्त उसी का अनुगमन किया। वे शब्दब्रह्म के साधक थे। लोक परम्परा, लोकभाषा, लोककला, लोकसंस्कृति, लोकसाहित्य, इतिहास एवं शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान तो थे ही इससे भी आगे वे राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत व चिन्तक थे। यह कहना अतिशियोक्ति नहीं होगी कि वे लोक संस्कृति के संरक्षक, संवर्धक व विकास के महान पुरोधा थे।

डॉ. विद्याचन्द जी का जन्म १३ जनवरी, १९५३ ई. को गांव खोड़ा आगे जिला कुल्लू में स्वर्गीय श्री उछबू राम व श्रीमती लोतमी देवी के घर हुआ। बचपन से ही वे पढ़ाई में होशियार थे। प्रारम्भिक शिक्षा गांव के स्कूल से पूरी करने के बाद स्नातक तक की शिक्षा राजकीय महाविद्यालय कुल्लू से ग्रहण की। हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला से संस्कृत में स्नातकोत्तर के बाद यहीं से ही ***''कुल्लुवी के संस्कृत मूलक शब्दः एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन''*** *शोध प्रबन्ध पर पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की। पीएच.डी के दौरान ही इन्हें भाषा एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश के जिला चम्बा में जिला भाषा अधिकारी के रूप में नियुक्ति मिली। इसके बाद इन्होंने भाषा अधिकारी के रूप में मण्डी, सिरमौर, सोलन, बिलासपुर व जिला हमीरपुर में अपनी सेवाएं दी। इन्हें दो बार हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी के सचिव पद पर रहकर प्रदेश की सांस्कृतिक और साहित्यिक विरासत को और अधिक उजागर करने हेतु व्यापक प्रयास किए। ठाकुर विद्याचन्द भाषा विभाग से ३१ जनवरी, २०११ को उपनिदेशक पद से सेवानिवृत हुए अकस्मात् ३१ अक्तूबर, २०१७ को असमय इस लोक से चले गए।*

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर सादा जीवन व उच्च विचार के पोषक थे। चम्बा जिला से उनका स्थानान्तर मण्डी जिला भाषा अधिकारी के रूप में वर्ष १९८८ में हुआ। उसी दौरान अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना का एक कार्यक्रम मण्डी में आयोजित था। संयोग से उन्हें उस कार्यक्रम में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। कार्यक्रम के मुख्य वक्ता अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी थे। उनका व्याख्यान भारत की प्राचीन गौरवमयी परम्परा विषय पर ओजस्वी पूर्ण व्याख्यान हुआ। उससे डॉ. विद्याचन्द जी प्रभावित हुए और भारतीय इतिहास की राष्ट्रवादी संकल्पना की ओर आकर्षित हो गए। बस फिर क्या था – यह निकटता समर्पण में बदल गई। उनकी लोक संस्कृति के साथ भारतीय इतिहास पर भी गहरी पकड़ बनती चली गई। वे हमेशा कहा करते थे कि इतिहास तथ्यों पर आधारित, प्रामाणिक व सत्य परक होना चाहिए। उनकी दृष्टि में

इतिहास ऐसा होना चाहिए जो राष्ट्र मानस के लिए प्रेरणा स्रोत हो। वे भारतीय कालगणना को वैज्ञानिक व राष्ट्रीय स्वाभिमान का विषय मानते थे। उनकी धर्म परायणता इतनी व्यापक थी कि वे धर्म को भारत का मेरुदण्ड मानते थे। वे कहते थे धर्म हमारी पहचान है। धर्म व अध्यात्म हमारा सर्वस्व है।

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर, ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी के वैचारिक पक्ष के निदेशक एवं इतिहास दिवाकर पत्रिका के सम्पादक रहे। उनके मार्गदर्शन में अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिसंवादों का आयोजन हुआ। शोध संस्थान की निर्माण गाथा, शोध संस्थान का दिशा निर्देश, विवेकानन्द साहित्य के कथा प्रसंग, भारतीय संस्कृति, लोक परम्परा में सृष्टि आख्यान, लोक गाथा दिग्दर्शिका आदि महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन आपके मार्गदर्शन में हुआ।

इतिहास दिवाकर त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका को वर्तमान स्वरूप देने का पूर्ण श्रेय डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी को जाता है। इसमें इतिहास पुरुष श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह संस्मरण विशेषांक, सार्धशती के उपलक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द विशेषांक, माननीय ठाकुर रामसिंह के शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य पर उनके आलेखों को संग्रहीत कर विशेषांक तथा अक्तूबर २०१७ हिमाचल प्रान्त के पूर्व प्रान्त कार्यवाह एवं शोध संस्थान नेरी के मार्गदर्शक स्वर्गीय श्री चेतराम स्मृति अंक अविस्मरणीय हैं।

इस विशेषांक में उन विद्वानों के संस्मरण दिए जा रहे हैं जिनका ठाकुर जी के साथ अति निकट का सम्बन्ध रहा है। उन्होंने अपने संस्मरणों के माध्यम से ठाकुर जी के जीवन को अपने–अपने ढंग से उभारा है।

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर का असमय चले जाना विद्वत जगत व नेरी शोध संस्थान के लिए अपूर्णीय क्षति है। ठाकुर साहब द्वारा चलाए गए कार्य तथा समय–समय पर किए गए उनके मार्गदर्शन पर चलना ही डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी के लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी। कलियुगाब्द ५१२०, विक्रमी संवत् २०७५, शक संवत् १९४० की इतिहास दिवाकर पत्रिका की ओर से बहुत–बहुत शुभकामनाएं।

विनीत,

डॉ. राकेश कुमार शर्मा

संस्मरण

लोक जीवन साधक : विद्याचन्द ठाकुर

चेतराम गर्ग

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर लोक जीवन साधक थे। लोक जीवन ही राष्ट्र की संस्कृति और विचार को व्यक्त करता है। भारतवर्ष पर नानाविध झंझावत् को सहन करने का जो सामर्थ्य बना रहा वह लोकशक्ति का ही परिणाम था। ठाकुर जी कहा करते थे कि लोक व शास्त्र दोनों में से यदि किसी को हमें चुनना पड़े तो लोक को ही प्रथम बरियता मिलती है। लोक ज्ञान का भण्डार है। यही उनका अन्तिम सांस तक साधना पथ रहा। कितने ही विद्वानों को उन्होंने अपने हाथों से गढ़ा और शब्द साधना में लगा दिया। उसी श्रृंखला में आते हैं – डॉ. सूरत ठाकुर, दीपक शर्मा, ठाकुर सीता राम, डॉ. राकेश शर्मा, डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, श्री रमेश जसरोटिया, डॉ. विवेक शर्मा आदि विद्वान। यह एक बड़ी श्रृंखला है। देश विदेश के साहित्यकारों, लेखकों, विचारकों के साथ विस्तार से चर्चा का अवसर प्राप्त हुआ। फ्रांस, रूस, जर्मनी आदि अनेक विदेशी विद्वानों तथा भारत के तत्वचिन्तक प्रो. श्रीनिवास मिश्र का सानिध्य प्राप्त हुआ। बस एक बार ठाकुर जी से परिचय होने की बात रहती थी फिर तो विद्वान उनके चेहते बन जाते थे। कई-कई दिनों तक विदेशी विद्वान उनके घर पर रहते थे। ठाकुर विद्याचन्द जी का जन्म कलियुगाब्द ५०५५, विक्रमी संवत् २०१० (१३ जनवरी, सन् १९५३) को पूज्य माता श्रीमती लोतमी देवी की कोख से पिता श्री उछबू राम के घर 'खोड़ा आगे' जिला कुल्लू हिमाचल प्रदेश में एक किसान घर में हुआ था। उछबू राम के कुल दो संतानें हुई। पुत्री कली देवी और पुत्र ठाकुर विद्याचन्द। विद्या चन्द अभी कोई ८ वर्ष की आयु के रहे होंगे कि उसी समय पूज्य पिता का साया उनके सिर से उठ गया था। ठाकुर विद्याचन्द पर माता लोतमी देवी का विशेष स्नेह रहा। पढ़ाई में विद्या चन्द प्रारंभ से ही कुशाग्र बुद्धि थे। अपनी कक्षा में प्रथम आना तथा हिमाचल विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक के साथ पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त करना गौरव की ही बात थी। शिक्षा पूरी होने पर भाषा कला संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश में जिला भाषा अधिकारी के पद पर नियुक्त हुए।

खोड़ा आगे : ठाकुर विद्याचन्द के गांव का नाम खोड़ा आगे है। अखरोट को पहाड़ी भाषा में खोड़ कहते हैं। विद्याचन्द ठाकुर का खानदान इस गांव में लगभग दो सौ वर्ष पूर्व बसने आया था। उस समय यहां पर एक अखरोट का पेड़ था। नया परिवार बसने तथा पूर्व में कोई दूसरा नाम न होने के कारण गांव का नाम ही खोड़ा आगे प्रचलित हो गया। इस गांव के लोग कस्तार खानदान के है। कस्तार गांव यहां से दस कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

गांव का वह दो सौ वर्ष पूराना अखरोट अभी तक मौजूद था। जिसके ७-८ बड़े-बड़े टहने थे। तने का घेरा बहुत व्यापक था। जैसे जैसे इस कस्तार खानदान के परिवार में बढ़ौतरी होती गई

उसी अनुपात में अखरोटट के हिस्सेदार बढ़ते गए। हिस्सेदारी टहनी बांटकर होती थी। एक बार ठाकुर जी ने अपने हिस्से का टहना मुझे दिखाया था। अपने हिस्से के टहने से ही लोग अखरोट लेते थे। यह समन्वय वर्तमान में भी विकसित गांव में सदैव बना रहा। खोड़ा आगे व्यास नदी के दांए पार्श्व पर जिला कुल्लू केन्द्र से बदाह से सीधा उपर पहाड़ी पर स्थित है। पैदल चलने पर एक घण्टा का समय लगता है। कच्ची सड़क से लगभग ८ कि.मी. की दूरी पर है। खोड़ा आगे से चारों ओर एक मनमोहक दृश्य बनता है। दिन हो अथवा रात। घर के दरवाजे से बाहर निकलते ही सामने भगवान बिजली महादेव के दर्शन होते हैं। बहती हुई व्यास नदी के किनारे बसा हुआ भून्तर कसबा अपने सौन्दर्य, सम्पन्नता व जीवन्तता का एहसास करवाता है। सेब अनार के बाग, आवाजाही के लिए राष्ट्रीय उच्च मार्ग व हवाई मार्ग, व्यास नदी में ग्राफटिंग करते हुए सैलानी, सामने पैरागलाईंडिंग करते हुए उत्साही युवाओं का दृश्य अपनी ओर खींचता है।

ठाकुर विद्याचन्द उच्च विद्या विशारद थे। सरकारी सेवा में भी उच्च पद पर आसीन हुए। भारतीय शास्त्र अध्ययन और चिन्तन भी उतना ही गहरा था उनका जीवन वर्तमान समाज परिवेश से भिन्न सादे ग्राम्यजीवन में बसता था। मेरा परिचय ठाकुर साहब से सन् १९६७-६८ में शिमला में आ गया था। उस समय अपनी अधूरी पढ़ाई को पूरा करने के साथ शिमला से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका मातृवन्दना का सम्पादन व प्रबन्धन का कार्य भी देख रहा था। ठाकुर जी उन दिनों शिमला में ही थे। अपने मित्र श्री लक्ष्मी शर्मा तथा वासुदेव शर्मा जी के साथ संघ कार्यालय आया करते थे। विद्वत क्षेत्र में उन का नाम ऊंचा था। इसलिए हमारी कभी-कभार मुलाकात हो जाया करती थी।

श्रीमान् कश्मीरी लाल जी शिमला सह प्रान्त प्रचारक के रूप में कार्य करने के लिए आए। एक ही केन्द्र होने के कारण हमारी खूब चर्चा होती रहती थी। उन्होंने मेरी रुचि को देखकर पत्रिका को व्यापक आयाम देने की योजना पर चर्चा की और मैंने भी कोई संकोच नहीं किया और कार्य के लिए हामी भर दी। इस पत्रिका के प्रसार कार्य की योजना के अन्तर्गत हमने ३० हजार परिवारों तक पहुंचने का निर्णय लिया। संगठन और कार्यकर्ताओं के दम पर हम इस कार्य में सफल हुए। हिमाचल प्रदेश के प्रत्येक जिला केन्द्र पर पत्रिका के विमोचन के कार्यक्रमों का आयोजन हुआ तथा मातृवन्दना पत्रिका का प्रचार और प्रसार का कार्य आगे बढ़ा। जब हम इस पत्रिका के सामग्री चयन तथा प्रुफ रिंडिंग का कार्य देख रहे थे उस समय ठाकुर विद्याचन्द जी हमारे साथ थे। यह कार्य पूरी रात भर होता था। दिन में सब अपने-अपने काम में होते थे। एक दिन हम लोअर बाजार कार्यालय में डॉ. राजेश कपूर, डॉ. विद्याचन्द और मैं, हम तीन लोग रात भर काम करते हुए जब प्रातः के छः बज गए तो मैंने संघ की प्रार्थना करने के लिए कहा। डॉ. विद्याचन्द जी हैरान हो गए। हमने प्रार्थना की और उन्होंने अपने मन के भाव व्यक्त किए। चेतराम जी, ''मैं कुल्लू में भी शाखा गया हूं। विश्वविद्यालय में भी कभी कभार मित्रों के साथ शाखा गया हूं। पर, संघ का यह स्वरूप देख कर तो मेरी आस्था संघ के साथ और प्रगाढ़ हो गई है। शाखा केवल मैदान में ही नहीं तो देश काल परिस्थिति अनुसार स्वरूप बदल सकता है, यह

मेरे लिए बहुत महत्व का विषय है। यह वह संपर्क था जो हमारे निकट लाया था।'

निर्पेक्ष स्वाभिमानी विद्याचन्द : ठाकुर विद्याचन्द निरपेक्ष तथा स्वाभिमानी थे। वे अपने लिए किसी प्रकार का महत्व नहीं चाहते थे पर यदि किसी ने अनापेक्षित ठेस मन को पहुंचाई तो वे उसको भी सहन नहीं करते थे। एक बार पत्रिका के बारे में बैठक चल रही थी। बैठक लेने वाले कार्यकर्ता ने कुछ ऐसी बात की कि ठाकुर साहब को वह बात छू गई। बात ऐसी थी कि क्या तुम पत्रिका में नाम ही छपवाते हो कि कार्य भी करते हो? यह बात ठाकुर जी के लिए नहीं थी। सामान्य सब के लिए थी। ठाकुर जी ने अगली ही बैठक में अपने विषय को प्रबन्धक टोली के सामने विषय रख दिया – पत्रिका से मेरा नाम हटा दिया जाना चाहिए तभी मैं पत्रिका के लिए काम करूंगा। पत्रिका के लिए काम करना मेरा आत्मिक उद्देश्य है और निजि स्वाभिमान रखना मेरा लौकिक उद्देश्य है। शान्त चित रहने वाले लोग कभी-कभी जीवन की उच्च पराकाष्ठा तक पहुंच जाते हैं। ऐसा मेरा उनके साथ प्रारम्भिक सम्बन्ध खड़ा हुआ तो उनकी अन्तिम सांस ३१ अक्तूबर २०१७ तक बना रहा। नेरी शोध संस्थान में आने पर सन् २००५ अक्तूबर से तो वह दो शरीर और एक प्राण जैसा हो गया था।

सन् २००८-०६ से मेरा आना जाना उनके घर पर प्रारम्भ हो गया था। शोध संस्थान से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका इतिहास दिवाकर के सम्पादक थे। पत्रिका के लिए अन्य सहयोग मैं करता था। ठाकुर साहब का यह निश्चित मानना था कि जब तक पत्रिका में मेरा नाम सम्पादक के रूप में जाता रहेगा तब तक मैं इसे स्वयं देखे बिना प्रकाशन के लिए जाने की अनुमति नहीं दे सकता। यह संपादक का धर्म है और इस धर्म का पालन करना ही होगा। पत्रिका में क्या प्रकाशित हो रहा है यह पूर्ण जिम्मेदारी सम्पादक की है। इस बात का कोई बचाव नहीं की लेखों की सामग्री से सम्पादक का कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसी हमारी समय-समय पर चर्चा होती रहती थी।

साधारण परिवार : घर परिवार का परिवेश सादा है। सरकारी सेवा से निवृत होने पर बड़े प्रसन्न हुए। अब मुझे अपने धार्मिक अनुष्ठानों, देवलियों में जाने का अच्छा अवसर मिलने वाला है। कुल्लू में देवता की देवलियां चलती रहती है। यह गांव व परिवार का आयोजन है। गांव में देवता आता है और बड़े उत्साह के साथ उसका स्वागत किया जाता है। एक बार मुझे भी उनके साथ देवली में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। इसमें वे खूब आनन्द लेते थे। घर नया बनाए होने के बावजूद भी वे अपने उस पुशतैनी मकान में ही रहते और सोते थे जो उनके दादा जी ने १०० वर्ष से भी अधिक समय पूर्व बनाया था। चारपाई का कोई प्रयोग नहीं करते थे। रजाई की जगह दौड़ू का ही प्रयोग करते थे। पुश्तैनी मकान का आन्तरिक ढांचा कुछ इस प्रकार है – अन्दर बड़े छोटे लकड़ी के संदूकों से ही उसके कमरे बनते है। अनाज के बड़े कठोर, कपड़े तथा अन्य सामानों के ये संदूक है। एक तरफ सर्दियों में तंदूर वाली बैठक। दूसरी ओर मिट्टी का चुल्हा जिस पर लोहदान रखने की व्यवस्था है। इसी के साथ रात्रि को पढ़ने वाले ग्रन्थ तथा शयन की व्यवस्था है। इस की निचली मंजिल में पशुओं के रखने का प्रावधान है। कई बार इसे गिराकर नये बनाने के योजना बनी पर ठाकुर जी का लगाव इसे टालता ही चला गया। इस मकान का कुछ भी करना होगा – तुम मेरे मरने के बाद ही करना। यही सत्य हुआ।

अपने सामने वह मकान नहीं गिराया। पूर्वजों के प्रति अथाह श्रद्धा ठाकुर जी के अन्दर कूट-कूट कर भरी हुई थी।

पूजा के प्रति भी उनका एक अपने प्रकार का चिन्तन था। उसी को वे मानते थे। पहाड़ों में देव मन्दिरों में मासिक संक्रान्ति के दिन देव पूजन की परम्परा है। उस परम्परा को वे कठोरता से पालन करते थे। जितने भी त्यौहार आते उन त्यौहारों में परम्परा के अनुसार कौन-कौन से पकवान बनाने की परम्परा है उसका निर्वहन उसी प्रकार से होना आवश्यक है। इस के प्रति आस्था रहना तथा उस कार्य को उसी नियम के अनुसार करना उनके जीवन का एक मुख्य कार्य था। प्रतिदिन की पूजा व्यक्ति को यथा समय देशकाल परिस्थिति के अनुरूप करने पर बल देते थे।

देव परम्परा को महत्त्व : माता जी के चतुवार्षिक श्राद्ध के समय एक ऐसी समस्या आई की पंडित जी अपनी बात पर अड़े रहे। ठाकुर साहब रुढ़ी को छोड़कर व्यवहारिक पक्ष की बात कर रहे थे। देवता का कार्य पूर्ण ग्राम समूह का कार्य है और माता जी का श्राद्ध एक व्यक्ति परिवार से सम्बन्धित है। पंडित जी जब नहीं माने तो उन्होंने गायत्री परिवार समूह के माध्यम से हवन यज्ञ करवाया। माता जी के श्राद्ध पर जो अतिरिक्त व्यय करना था उसकी पुस्तकें खरीद कर शोध संस्थान को भेंट की गई। रूढ़ियों को तोड़ना और नये परिवेश और अपने कार्य को सरल मार्ग की ओर ले जाना विद्वानों का काम होता है।

घर के अन्दर धूम्रपान वर्जित : देवता पराशर को मानने वाले स्थानीय लोग अपने घरों में धूम्रपान नहीं करते हैं। धूम्रपान के आदि लोगों को धूम्रपान करने के लिए घर से बाहर दूर जाना होता है। यह परम्परा उस क्षेत्र में व्यापक स्तर पर फैली हुई है। यह परम्परा कितने पुराने समय से चली आ रही है इसका का अनुमान लगाना कठिन है।

खेत में गोबर ले जाने की सेवा : ठाकुर विद्याचन्द सेवानिवृत होकर घर आ गए। घर पर खेती बाड़ी का काम है। वह भी पहाड़ी ढंग की कोई ट्रेक्टर नहीं। छोटे-छोटे खेत। फसल उसमें अच्छी होती है। घर आकर उन्होंने कह दिया कि पशुओं का गोबर इकट्ठा करना और खेत ले जाने का कार्य अब मैं किया करूंगा। उनका बेटा फतेश्वर ठाकुर व पत्नी उन्हें कहते, 'ये आप क्या करते हैं? हम पूर्व से ही अपनी व्यवस्था से इस कार्य को करते हैं। आप अपने पढ़ने-लिखने का काम किया करो। यह सब काम करते हुए आप अच्छे थोड़े ही लगते हो?' ठाकुर जी इस बात का बड़ा सुन्दर उत्तर दिया करते थे– 'काम तो मैंने पढ़ने-लिखने का ही करना है। मैं तुम्हारे काम में कोई व्यवधान नहीं डालता। अच्छा क्या है यह तो मुझे लगना चाहिए न कि लोगों को। पशुओं का गोबर इक्ट्ठा करना और खेत ले जाना इस से मेरा दिन भर का व्यायाम हो जाता है। तुम क्या करते हो इस बहाने खेत में जाना हो जाता हैं। हां जब मैं यहां न हूं तो फिर तुम स्वयं करो।

चाय : सेवानिवृति के उपरान्त दो मास में १५ से २० दिन वे नेरी शोध संस्थान में ही रहते थे। वैसे तो घर पर भी वे शोध संस्थान नेरी के लेखन और पढ़ने का ही कार्य करते थे। भोजन उन्होंने दो समय करना होता था। प्रातः ११.०० बजे और रात्रि आठ साढ़े आठ के मध्य वे भोजन करते थे। चाय

वे कभी-कभी स्वयं बनाते थे। शोध संस्थान में नींबू घास के बूटे लगे हुए हैं। उसकी चाय वे अधिक पसन्द करते थे। चाय के बारे में उनका कहना था– हमारे में कोई और नशा तो नहीं है। चाय भी नशे के लिए नहीं पीते। काम करती बार ध्यान बना रहे उस के लिए चाय अच्छा काम करती है। कभी-कभी वे रात को पढ़ती बार गुड़ का प्रयोग करते थे। रात को १२ बजे से पूर्व कभी सोना नहीं होता था। जब उनको काम को पूरा करना होता था तो सुबह के चार भी बज जाते थे। रात को कभी भी सोएं सुबह छः बजे ही उठ जाते थे।

ठाकुर विद्याचन्द और ठाकुर राम सिंह जी का सम्बन्ध : ठाकुर विद्याचन्द मण्डी में जिला भाषा अधिकारी थे। मा. ठाकुर रामसिंह जी के पास अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय अध्यक्ष का दायित्व था। यह बात वर्ष १६८८-८६ के मध्य की है। ''भारत का गौरवमय इतिहास' इस विषय पर ठाकुर जी का उद्‌बोधन था। ठाकुर विद्याचन्द जी भी उस कार्यक्रम में थे। यह उन दोनों महापुरुषों का प्रथम साक्षात् दर्शन था। मा. ठाकुर रामसिंह जी की ओजस्वी वाणी, विचारों की दृढ़ता, भाव पूर्ण परिपक्वतापन किसी को भी झझकोर देता था। अपने देश का गौरवमय इतिहास का व्याख्यान ठाकुर जी का एक से डेढ़ घण्टे निर्बाध रूप से चलता था। ऐसा ही यह व्याख्यान था कि डॉ. विद्याचन्द जी इतिहास संकलन योजना की ओर आकर्षित होते गए। यह सम्पर्क बढ़ता गया और इतिहास संकलन योजना के विविध दायित्व का निर्वहन करते-करते डॉ. विद्याचन्द जी, इतिहास संकलन योजना के कर्मठ कार्यकर्ता बन गए। इन का स्वभाव संगठक का नहीं एक चिन्तक और लेखक का रहा है। इन के कुशल नेतृत्व में इतिहास संकलन योजना एवं नेरी शोध संस्थान में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अनेक परिसंवादों का आयोजन हुआ।

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी का कार्य सन् २००३ से प्रारम्भ हुआ। मा. रामसिंह जी अखिल भारतीय संकलन योजना के कार्य से मुक्त हुए और दूसरी ओर शोध संस्थान का कार्य सन् २००३ से प्रारम्भ हुआ। ठाकुर विद्याचन्द जी शोध संस्थान के कार्य के साथ पूरी तनमयता के साथ लग गए।

त्रिदेव : स्वर्गीय ठाकुर रामसिंह जी, स्वर्गीय चेतराम जी और डॉ. विद्याचन्द ठाकुर ये संस्थान के त्रिदेव थे। बाह्य व्यवस्था का कार्य चेतराम जी देखते थे। क्या करना है इसकी चर्चा मा. ठाकुर रामसिंह जी करते थे और उसको साकार रूप देने का कार्य ठाकुर विद्याचन्द ठाकुर जी करते थे। ठाकुर रामसिंह जी अपनी बात और कार्य पर अडिग रहने वाला व्यक्तित्व था। कई बार ऐसा निर्णय ले लेना कि उस पर अड़ जाते थे। ऐसे समय में ठाकुर विद्याचन्द जी और स्वर्गीय चेतराम जी उन्हें समझाने का कार्य करते थे। समझाने का मेरा अभिप्राय उनके ऊंचे सुनाई देने की समस्या था। ठाकुर जी को ऊंचा सुनाई देता था ऐसे में कई विषय गंभीर रूप ले लेते है।

ऐसी एक घटना वर्ष २००६ में हुए लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार के राष्ट्रीय परिसंवाद के समय की है। विद्याचन्द जी ने पूर्व योजना के अनुसार चम्बा के लोक गायकों को बुलाया हुआ था। मा. ठाकुर रामसिंह जी समय अभाव के कारण लोक गायकों को उद्‌घाटन सत्र में न बुलाकर रात्रि

कार्यक्रम के लिए कह रहे थे। विद्याचन्द ठाकुर जी का विचार समाज में उस महत्वपूर्ण कला प्रदर्शन की इच्छा थी। इस पर रात को काफी समझाने पर भी ठाकुर रामसिंह जी समझ नहीं पा रहे थे। पर रात भर विचार करने पर प्रातः बड़े सरल ढंग से समझ गए और चम्बा का सृष्टि गायन अन्य प्रान्तों से आए विद्वानों भी बड़ी श्रद्धा से सुना और उस में आनन्द लिया।

व्यवहारिक पक्ष पर जोर : डॉ. विद्याचन्द व्यवहारिक व्यक्ति थे। रायदारों और बड़ी-बड़ी बातें करने वालों से वे दूर रहते थे। उनकी बातों का उत्तर ही नहीं देते थे। ध्यान से सुनते थे। संस्थान में जब उन्होंने आना तो उन्होंने पहले ही मुझे जानकारी देकर रखना – ''काम पूरा होने तक मुझसे मिलने और चर्चा करने वाले न ही आए तो अच्छा रहेगा। हां काम पूरा हो गया तो उसके बाद यदि हमारे पास समय है तो बात करने में कोई हर्ज नहीं है।

ऋषि पराशर यात्रा : इस वर्ष ठाकुर जी अपने इष्ट ऋषि पराशर से शरीरी तौर पर अन्तिम दर्शन की तैयारी कर चुके थे। १४ जून २०१७ को सप्ताह भर से वे शोध संस्थान में थे। इन्हीं दिनों मेरा प्रवास कांगड़ा धर्मशाला का चल रहा था। उन्होंने मुझे बताया कि १४ जून को में चला जाऊंगा क्योंकि मुझे संक्रान्ति पर ऋषि पराशर जाना है। संक्रान्ति पर वहां नाहूली मेले का आयोजन होता है। मैंने ठाकुर जी से कहा – '१४ जून को मैं आ जाऊंगा फिर दोनों इक्ट्ठे चलेंगे। उन्होंने सहमति देते हुए कहा – फिर तो हम १५ जून की सुबह भी चल सकते है। आप रात्रि तक आराम से आओ। मैं रात्रि को संस्थान में पहुंच गया। प्रातः हम नहा धोकर संस्थान से चले। रास्ते में सारे विषय संस्थान के विषय में चलते रहते रहे। अब वे संस्थान की प्रक्रिया व गति से संतुष्ट लगने लगे थे। हम उस दिन कब पराशर पहुंच गए हमें पता ही न चला। गाड़ी की गति भी अच्छी रखनी ही थी क्योंकि हमें वहां पर १०.३० बजे की देवताओं की उस पूरी प्रक्रिया के दर्शन करने थे। पराशर जाकर हम आनन्द से अविभूत हो गए। छायाचित्र उतारे। प्रथम दर्शन में वहां घास व पुष्प वहीं से तोड़ कर डालनी होती है। वह सब किया। देव दर्शन किया। देवता से चावल लिए। मुख्य पुजारी से मिले। २-३ घण्टे हमने उस प्रकृति देवता स्थल मिलने वाले मित्र बन्धुओं से मिलते हुए ढाई से तीन घंटे वहां से कुल्लू की ओर चले। बच्चों परिवार के लिए मिठाई, शकरपारे, पकोड़े लिए। बहन जी के लिए दराटी ली। ऐसा कुछ सामान खरीदा। संक्रान्ति के इस आयोजन में मैंने भी खूब आनन्द लिया।

२२ सितम्बर का दूरभाष : मुझे २२ सितम्बर २०१७ को ठाकुर साहब का दूरभाष आया। चेतराम जी कहां हो? मैंने कहा – ठाकुर जी आज शाम संस्थान में पहुंच रहा हूं। अच्छा ठीक है। आप ऐसा करो कि परसों गाड़ी लेकर पराशर आ जाओ। मैं भी परिवार तथा अपने साथियों के साथ कल पराशर आ रहा हूं। इस बार के मेले में आप को विशेष कुछ बातें बतानी है। ऋषि पंचमी के उपलक्ष्य में यहां विशेष मेले का आयोजन होता था। इस बीच आप अपना संगठनात्मक प्रवास भी कर सकते हैं। फिर इकट्ठे नेरी चलेंगे। ठाकुर जी संगठनात्मक प्रवास की बात पहली बार कर रहे थे। मैं दूसरे दिन प्रातः प्रदीप जी को साथ लेकर चला। पहले हम अपने पाचक बलवीर के घर रोपड़ी, सरकाघाट गए। वहां चिड़िया व्रत का उद्यापन था। वहां से मन्दिरों के दर्शन करते हुए मण्डी सेवा भारती छात्रावास में

विश्राम किया। २४ सितम्बर हम वहां से पराशर की ओर चले। पराशर ऋषि की ओर जाने वाली गाड़ियों का तो जैसे सैलाब ही आ गया हो। समय पर पहुंचना आवश्यक था। आज मेले में एक देवता दूसरे देवता का स्वागत किस प्रकार करता है किस प्रकार की उमंग बनी होती है उस भाव भावना का अध्ययन करना, उसे महसूस करना ही लोक संस्कृति की अनूभूति प्राप्त करना है। हम लोगों का मिलान उस दिन पराशर में हुआ। चार से पांच घंटे हम इकट्ठे रहे। उन्होंने उस सारे वातावरण, देवपरम्पराओं के चिन्तन के बिन्दुओं को गहराई से अवलोक और अध्ययन करवाया। वापिस में २० कि.मी. तक वे मेरे साथ आए। मुझे तो मण्डी ही आना था। उन्होंने वापिस कुल्लू जाना था। वे अपने साथियों की प्रतीक्षा करने लगे। ऐसे अद्‌भुत देव आस्था संगम की उन्होंने मुझे अनुभूति करवाई। वैसे मेरा यह प्रवास लाहौल स्पिति तक का हो गया। उन्हें अपनी देव पूजा के बाद नेरी आना था। २ सितम्बर को हम कुल्लू से चले और नेरी पहुंच गए। रास्ते के लिए वे मक्की की रोटी घर से लाए हुए थे जो हमने संस्थान में आकर खाई। गत् दो वर्षों से मैं उनके साथ अधिक समय देने लग गया था। कुल्लू आना-जाना और रास्ते में चार घण्टे की चर्चा ऐसा मौका मिलना बहुत कठिन था। संस्थान में प्रातः की चाय कम से कम एक से दो घण्टे का चर्चा सत्र सामान्य रूप से रहता था।

शोधकर्ताओं के मार्गदर्शक : डॉ. विद्याचन्द ठाकुर नवीन शोधकर्ताओं के लिए सहज सुलभ मार्गदर्शक थे। संस्थान का नाम तथा कार्य आगे बढ़ने के साथ मेरे पास अनेक शोधार्थी शोध संस्थान में आते रहते हैं। किस विषय पर काम करना चाहिए, उस विषय के लिए हमें सामग्री कहां से उपलब्ध होगी आदि चर्चा शोधार्थी मुझ से करते। मैं उन सारी चर्चा को ठाकुर जी के समक्ष रखता था। ठाकुर साहब मेरी बात सुनकर सहज ही पता लगा लेते थे कि शोधकर्ता किस स्तर का है। काम करने वाले को प्रोत्साहित करना उसे काम की बारीकियों का अहसास करवाना इन सब बातों का वे अभ्यास करवाते थे। वह इस बात पर भी ध्यान देते थे कि जो शोधार्थी हमारे पास मार्गदर्शन प्राप्त करने आ रहा है उससे सम्बन्धित साहित्य क्या हमारे पास उपलब्ध है? यदि उससे सम्बन्धित साहित्य हमारे पास उपलब्ध नहीं है तो वे मुझे आवश्यक साहित्य की सूचि लिखवाकर तैयार करवानी, पुस्तकें क्रय करनी कार्य उसे सही ढंग से बता सके कि तुम अपने कार्य को किस प्रकार सही स्वरूप दे सकते हो।

ठाकुर साहब का मेहनत करने का ढंग भी निराला ही था। क्या कोई उच्च स्तरीय विद्वान मेहनत करता है? लोक परम्परा में सृष्टि आख्यान पर वे कार्य कर रहे थे। सबके शोध पत्र देखने के उपरान्त उन्होंने मुझे बताया - चेतराम जी इस काम में कम से कम तीन वर्ष लगेंगे? मैं सोचता कि शोध पत्र तो आए ही हैं। उनमें जो त्रुटियां है वही तो ठीक करनी है। त्रुटियों को ठीक करने के लिए तीन वर्ष कैसे लगेंगे? उन्होंने बताया कि हमारे पास सामग्री तो आ गई है। यह खाली सामग्री है। यह सब अव्यवस्थित है। इस व्यवस्थित करने के लिए हमें उनके मूल ग्रन्थों में जाना पड़ेगा। उन परम्पराओं को समझना पड़ेगा जिन का इन विद्वानों ने वर्णन किया है। कई बार विद्वान विषय वस्तु को उठा लेता है और मूल का उसे ज्ञान नहीं होता। जब हम मूल में जाते हैं तो हमें वहां कुछ और ही संदर्भ

मिलते हैं। जैसे-जैसे कार्य आगे बढ़ा तो उस कार्य को पूरा होने में तीन साल के बजाए छः वर्ष लग गए। वर्ष २०१५ श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी का शताब्दी वर्ष था। इस शुभ अवसर पर यह काम पूरा हो जाए तो शताब्दी वर्ष का महत्त्व और बढ़ जाएगा। उन्होंने उसमें हिम्मत दिखाई और कार्य पूरा हो गया। कार्य पूरा होने पर हम सब को विशेष प्रसन्नता हुई। कार्य होने पर ही तो कार्य का महत्व समझ में आता है। फिर ठाकुर जी मुझ से कहते कि चेतराम जी आपने जोर न दिया होता तो शायद एक वर्ष और यह कार्य लटक जाता। अपने को महत्त्व न देकर दूसरे को महत्त्व देते थे।

हिमाचल प्रदेश की सनातन संस्कृति पर उनका कार्य चल रहा था। उसकी सारी रूप रेखा उन्होंने तैयार कर रखी थी। उसका ८०% उसका काम पूरा भी कर लिया था। इस अक्तूबर तक उसे पूरा करने की बात उन्होंने निदेशक मण्डल के सामने रखी थी। हमें क्या पता था कि उन्होंने इस अक्तूबर की अन्तिम तिथि को हम सब लोगों को छोड़ कर चले जाना है। पर जब इस विषय पर चर्चा होती थी तो वे कहते थे - मैं यू ही नेरी के काम की अधिकता का दोष देता हूं। नेरी ने मुझे खुले हाथ से काम को पूरा करने का समय दे रखा है। ये तो कुछ ऐसा है कि हर चीज ईश्वर की मर्जी के बिना कुछ नहीं होता। मैं फिर भी काम पूरा नहीं कर पाया हूं। लोग मुझे बुला लेते हैं। जहां हां कर दी उससे पीछे हटने का कोई प्रश्न ही नहीं है। इस कारण अपना शोध कार्य कहीं न कहीं खड़ा हो जाता है। मैं तो गीता पर विश्वास करता हूं। जिस काम को उसने पूरा करवाना है वही पूरा होगा। हम तो यूं ही एक दूसरे पर दोषारोपण करते रहते हैं।

जीवन का अन्तिम समय : नश्वर शरीर का अपना निश्चत धर्म है। हिमाचल प्रदेश में विधान सभा चुनाव का दौर चल रहा था। लम्बी बिमारी के उपरान्त स्वर्गीय चेतराम जी के विशेषांक की पाण्डुलिपि लेकर में कुल्लू गया हुआ था। यह १३-१४ अक्तूबर २०१७ की बात है। उन्हें पेट में दर्द और भारीपन महसूस हो रहा था। उनके निजि परिचित डॉक्टर को दिखा भी आए थे। पत्थरी है ऐसी बात जांच पड़ताल में निकली। चिन्तित होने का कोई बड़ा विषय नहीं था। फिर भी देसी दवाई और गोलियां ले रहे थे। बड़ी सामान्य शल्य चिकित्सा होनी थी। पुनः दिखाने पर शुगर की समस्या जांच के दायरे में आई। शुगर कम होने पर ही शल्य क्रिया हो जाएगी। निजि अस्पताल का रवैया जैसा रहता है इसका शिकार हो गए। मेरी प्रतिदिन उनसे बात होती थी। मैंने उन्हें किसी और अस्पताल में ले जाने की भी बात की। एक दिन रुक कर देख लेंगे ऐसी चर्चा हुई। २६ अक्तूबर को मेरी उनसे बात हुई। ३१ अक्तूबर प्रातः ५.३० बजे शिमला से पराशर जी का दूरभाष आया कि रात्रि ३.०० बजे डॉ. विद्या चन्द ठाकुर स्वर्गारोहण कर गए। हम ठगे से रह गए। किसको दोष दें। कहां गलती हुई पर अब तक वे हम से बिछुड़ चुके थे। एक सच्चा साधक और साथी हमसे बिछुड़ चुका था। सायं ४ बजे कुल्लू दाहसंस्कार में सैकड़ों साहित्य प्रेमियों, रिश्तेदारों तथा समाज सेवकों के समक्ष पार्थिव देह को पुत्र फतेश्वर ठाकुर ने अग्नि दी।

समन्वय प्रमुख एवं निदेशक
शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.)

उनके ध्येय पथ पर चलना होगा

डॉ. सूरत ठाकुर

हिमाचल प्रदेश में विरले लेखक विद्वान ही ऐसे हैं, जिन्होंने लोक संस्कृति के संरक्षण, संवर्द्धन एवं महत्व पर लेखनी चलाई हो। इनमें स्व. डा. विद्या चन्द ठाकुर का नाम अग्रणी रहा है, जिन्होंने लोक संस्कृति के सभी पहलुओं पर लिखा है। मृदुभाषी, सरल हृदय, सादगी पसन्द, भाषाविद, संस्कृति कर्मी विद्वान डॉ. विद्याचन्द ठाकुर के आकस्मिक निधन से प्रदेश के लेखक, साहित्यकार, कलाकार, संस्कृति कर्मियों को गहरा आघात लगना स्वाभाविक है। विश्वास ही नहीं हो रहा है कि वे आज हमारे बीच नहीं है। उनके व्यक्तित्व की क्षतिपूर्ति तो नहीं हो सकती, परन्तु उनके पदचिन्हों पर चलने और लेखन कार्य करते हुए उनके ध्येय को आगे तो बढ़ाया ही जा सकता है। यही उनके लिए सच्ची श्रद्धांजली होगी।

१३ जनवरी, १९५३ को जिला कुल्लू की ग्राम पंचायत पीज के गांव खोड़ाआगे में स्व. श्री उच्छबू राम और श्रीमती लोतमी देवी के प्रथम संतान के रूप में अवतरित हुए और ३१ अक्तूबर, २०१७ को निर्वाण प्राप्त कर चुके डॉ. विद्याचन्द ठाकुर बाल्यकाल से ही होनहार थे। पहली से लेकर स्नातकोतर तक शिक्षा ग्रहण करने तक प्रथम श्रेणी में उतीर्ण होते रहे। संस्कृत विषय में स्नातकोतर करने के बाद उनका रूझान भाषा-बोली में रहा, इसलिए उन्होंने **कुल्लूवी के संस्कृत मूलक शब्द** नामक विषय पर हिमाचल प्रदेश-विश्वविद्यालय शिमला से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त करके लोकभाषा के प्रति अपनी रुचि का परिचय दिया। पीएच.डी के दौरान ही भाषा एवं संस्कृति विभाग में जिला भाषा अधिकारी के पद पर नियुक्ति हुई। प्रायः किसी पद पर नियुक्त होने से व्यक्ति की पहचान दफ्तर से बाहर कम ही होती है, परन्तु कुछ लोग अपने पद की गरिमा साकार करते हुए उस पद की पहचान में चार चांद लगाते हैं। ऐसे ही डॉ. विद्याचनद ठाकुर की कार्यक्षमता रही है। उनकी विद्वता से भाषा विभाग लाभान्वित ही हुआ। सिरमौर, चम्बा, मण्डी, हमीरपुर में जिला भाषा अधिकारी रहते हुए उन्होंने इन जिलों के कलाकारों, साहित्यकारों, संस्कृति कर्मियों तथा लेखकों को लगातार प्रोत्साहित किया।

मेरी मुलाकात डॉ. विद्या चन्द ठाकुर से नाटकीय ढंग से पीज गांव में एक मेले में हुई। संगीत में स्नाातकोतर करने के बाद जब मेरा पीएच.डी. में नामांकन हुआ और तत्कालीन विभागध्यक्ष डा. इन्द्राणी चक्रवर्ती के निर्देशन में **चम्बयाली और कुल्लूवी संगीत का सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन** नामक विषय पर काम आरम्भ हुआ तो स्वाभाविक था कि मैं लोकसंगीत से जुड़े लोगों तथा संस्थाओं से सामग्री संकलन के लिए सम्बद्ध हो जाता। इसलिए मैं कुल्लू के प्रसिद्ध सांस्कृतिक दल जमलू कला मंच के साथ जुड़ गया। इस मंच के अध्यक्ष प्रसिद्ध लोकनर्तक मास्कट

कर्म चन्द ठाकुर थे। यह मंच गांवों से लेकर प्रदेश के मेलों के साथ-साथ देश के अन्य प्रान्तों में भी अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करता था। कुल्लू के पीज गांव के **दरपौयण** मेले में भी इस दल ने अपना कार्यक्रम रखा था। मुझे भी उनके साथ इस मेले में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। इस कार्यक्रम के मुख्यातिथि डॉ. विद्या चन्द ठाकुर थे। सांझ ढलने पर भोजनोपरान्त जब कार्यक्रम आरम्भ हुआ तो कार्यक्रम से पूर्व मंच के अध्यक्ष ने मुझे उनके स्वागत में बोलने के लिए कहा। मैं इस गांव में अजनवी था। इसलिए बोलने से पूर्व अपने अंदाज में उनका परिचय दिया। तत्पश्चात् मेले के महत्व के बारे में अपने विचार रखे। मेरे बाद मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. विद्याचन्द ठाकुर का उद्‍बोधन था। उन्होंने अपने नपे-तुले शब्दों में लोक संस्कृति को बचाने की अपील करते हुए कहा कि हम सब को अपने गांव की लोक संस्कृति और भाषा के मूल को सहेज कर रखना है। अपनी संस्कृति से ही हमारी पहचान कायम है।

यह मेरी उनसे पहली मुलाकात थी। कार्यक्रम देर तक चला। वे रात्रि विश्राम के लिए किसी रिश्तेदार के साथ चले गए। हम किसी और घर में ठहरे। कुल्लू के **लग-महाराजा** क्षेत्र में सद्‍भावना और मेलजोल बढ़ाने की अनूठी परम्परा यह है कि दूसरे गांव से जो मेहमान या रिश्तेदार मेले में आते हैं, वे अपनी टोली के साथ गांव के हर घर में हाजरी भरते हैं। राम-राम करने के बाद घर वाले उनका **सूर चाटकी** से स्वागत करते हैं। हर घर में उन्हें एक गिलास सूर या चाकटी तथा हाथ पर ही एक भुटुरू और उस पर सब्जी दी जाती है। उनका सेवन करने के बाद थोड़ी देर वहां रूक कर अगले घर की ओर रूखसत हो जाते हैं। गांव वालों ने महीनों पहले से मेहमानों की आवभगत में इस पेय पदार्थों का भंडारण किया हुआ होता है। घर से एक टोली उठती है, दूसरी पहुंच जाती है। इस प्रकार यह सिलसिला शाम तक चलता है। इसी परम्परा का निर्वहन करते हुए एक घर में दूसरी बार डॉ. विद्याचन्द ठाकुर से मिलना हुआ। दुआ-सलाम के बाद उन्होंने पहला वाक्य मुझे यही कहा, **'सूरत जी, आपके विचार सुनने पर ऐसा लगा कि कुल्लूई संस्कृति के बीज आप में कूट-कूट कर भरे हैं। मुझे विश्वास है कि अपनी समृद्ध संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने में आप का योगदान अहम् रहेगा।'**

मैं तो बचपन से ही मेले में रात-रात भर नाच-गाने में मसरूफ रहा हूं। इसीलिए मैं चम्बयाली और कुल्लू संगीत में शोधकार्य कर रहा हूं। मेरे द्वारा पीएच.डी. की बात सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपनी ओर से मुझे पूरा सहयोग देने का वादा भी कर गए। मेले के २०-२२ दिन बाद एक दोपहर मेरे पास मास्टर कर्मचन्द जी आए और डॉ. विद्याचन्द ठाकुर का पत्र दिखाते हुए बोले कि राजकीय महाविद्यालय चम्बा में संगीत शिक्षक का पद खाली है। वहां संगीत शिक्षक की तुरन्त आवश्यकता है। अगर मैं वहां आना चाहूं तो उन्हें अच्छा लगेगा। अन्धा क्या चाहे दो आंखें। मुझे जैसे बिन मांगे ही सब कुछ मिल गया हो। मैंने मास्टर कर्मचन्द का आभार व्यक्त करते हुए उसी समय चम्बा जाने का निर्णय ले लिया और शाम पांच बजे की मनाली-चम्बा बस में सवार हो गया। उनके सहयोग से मुझे चम्बा कालेज में पढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं उनके साथ दो साल तक चम्बा में रहा और मेरा पीएच.डी का शोध प्रबन्ध वहीं पर उनके सहयोग से पूरा हुआ।

वे शास्त्र पर अध्ययन करने से पूर्व लोक परम्पराओं को देखने पर बल देते थे। लोक पर काम करने के लिए डॉ. विद्याचन्द ठाकुर अक्सर महर्षि वेदव्यास जी की लिखी एक उक्ति का उदाहरण दिया करते थे – **प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः।** अर्थात् जो व्यक्ति लोकतत्व का प्रत्यक्ष दर्शन करता है, वही दर्शन की सर्वज्ञता प्राप्त कर सकता है।

चम्बा में भाषा अधिकारी रहते हुए उन्होंने सभी गांवों की संस्कृति को देखने के लिए नियमित दौरे किए। उनके साथ मुझे भी जाने का अवसर प्राप्त हुआ। वहां पर जनजातीय क्षेत्र **रेण्हूकोठी** का लोकनृत्य दल, साहू का लोकनृत्य दल, सनातन धर्म सभा चम्बा, चम्बा लोक कला मंच और श्याम दर्पण कला मंच आदि लोक संस्कृति के दलों को बढ़ावा दिया। उनसे चम्बा की ठेठ संस्कृति को प्रदर्शित करने हेतु सुझाव दिए। चम्बा के पारम्परिक लोकगीतों को संग्रहित करने के लिए साहित्यकारों और कलाकरों को प्रोत्साहित किया। उस समय वहां पर राजकीय महाविद्यालय में प्रो. नरेन्द्र अरुण हिन्दी विभागाध्यक्ष थे, उनके साथ मिलकर उनकी 'सुनयना के जनपद' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में चम्बयाली संस्कृति के विविध पक्षों को उजागर किया गया है। संयोग देखिए सितम्बर, १६८५ में मुझे मण्डी कालेज में आना पड़ा। लगभग १५ दिन बाद उनका तबादला भी मण्डी हो गया। मण्डी में भी एक साथ एक ही मकान में रहे।

मण्डी में भी उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किए। मण्डी का प्रसिद्ध सांस्कृतिक दल मांडव्य कला मंच उन्हीं द्वारा स्थापित किया गया है। मांडव्य कला मंच के माध्यम से मंडी के लुड्डी लोकनृत्य को मंच पर लाकर एक पहचान दिलाने में उनकी ही सोच का परिणाम है। मैं भी मांडव्य कला मंच से जुड़ा हुआ हूं। उनके निर्देशन में मांडव्य कला मंच का पहला कार्यक्रम पराशर ऋषि के पावन धाम में सौरा नाहुली मेले में हुआ। लोकनृत्य दलों को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ उन्होंने मण्डी जनपद के मन्दिरों का अध्ययन किया। परिणाम स्वरूप उनकी 'माण्डव्य प्रभा' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। माण्डव्य प्रभा में इक्कीस देव स्थलों का विस्तृत विवरण मिलता है। जिनमें उन्होंने मण्डी शहर के पुरातात्विक महत्व के मंदिर त्रिवेणी महादेव, ममलेश्वर महादेव, छत्रेश्वर महादेव, शाला का मशट्रियोल शिवद्वाला, शिकारी देवी, महायोगी हनोगी का शक्तिपीठ, काओ का कामाक्षा मन्दिर, पांगणा का महामाया कोट, बनौणी का महामाया मन्दिर, पांण्डवों के ठाकुर कमरूनाग, धुआंदेवी मन्दिर, मूल मांहूनाग, खणी का देव छमाहू, हुरंग नारायण, पिंगला के लक्ष्मीनारायण मन्दिर, कमलाहगढ़ का ऐतिहासिक दुर्ग, जमदग्नि तीर्थ ततापाणी, महर्षि पराशर का पावन धाम, तीर्थ स्थली रिवालसर आदि का बेहद रोचक ढंग से विवरण दिया है। मण्डी से निकलने वाली साहित्यक पत्रिका 'शैलपुत्र' जो बन्द हो चुकी थी, उन्होंने इसे पुनर्जीवित किया और मुरारी शर्मा के संपादकत्व में तब तक चलती रही जब तक वे मण्डी जिला भाषा अधिकारी रहे। पहली गैर सरकारी पहाड़ी भाषा की पत्रिका 'बागर' का प्रकाशन भी उनके समय में उनके सहयोग से आरम्भ हुआ। प्रसिद्ध छायाकार बीरबल शर्मा जो केवल स्टुडियो में बैठकर ही लोगों के फोटो खींचते थे। उनकी प्रतिभा को पहचान कर डॉ. विद्याचन्द ठाकुर ने उन्हें लोक संस्कृति के छायाचित्र खींचने के लिए प्रेरित किया। उनके द्वारा खींचे गए छायाचित्रों की प्रदर्शनी लगवाई, जिससे प्रोत्साहित होकर आज हिमाचल प्रदेश में एकमात्र छायाकार बीरबल शर्मा है, जिन्होंने हिमाचल

प्रदेश की लोक संस्कृति के विविध पक्षों को उजागर किया। आज देश विदेश में इनके छायाचित्र मशहूर हैं। जनचेतना संघ मंडी द्वारा बीरबल शर्मा की देखरेख में हिमाचल दर्शन फोटो गैलरी की स्थापना के पीछे भी डॉ. विद्याचन्द ठाकुर का हाथ है। इस गैलरी को कुल्लू-मनाली आने वाला हर पर्यटक अवलोकन करता है। इन चित्रों को देखकर हिमाचल के दूर दराज़ के रमणीय स्थलों तक पर्यटक पहुंचने लगे हैं।

मण्डी के बाद डॉ. विद्या चन्द ठाकुर कुछ समय तक हमीरपुर में जिला भाषा अधिकारी रहे। वहां पर भी उन्होंने हमीरपुर की लोक संस्कृति के अछूते पहलुओं को तलाशने का काम किया। इसी दौरान वे व्युत्पत्तिविद अधिकारी के पद पर पदोन्नत होकर विभाग मुख्यालय शिमला चले गए। शिमला में इन्होंने हिमाचल की सभी बोलियों के अध्ययन की रूप रेखा तैयार की। परिणामतः हिमाचल प्रदेश के स्थान नाम व्युतपत्तिजन्य विवेचनात्मक अध्ययन' नामक पुस्तक का पहला भाग प्रकाश में आया। इसी पुस्तक में वे एक जगह लिखते है व्युत्पति का तात्पर्य है 'विशिष्ट उत्पत्ति' जिसमें शब्द और उसके अर्थ की पृष्ठभूमि का विशिष्ट विवेचन होता है। व्युत्पति विज्ञान को प्राचीन भारतीय परम्परा में निरूक्त शास्त्र कहते हैं। शब्द व्युत्पति के आधार पर डॉ. विद्या चन्द ठाकुर का मानना है कि किन्नौर शब्द की व्युत्पति मूल शब्द किन्नर से करें तो किन्नर से कनाऊर और कनाऊर से कनौर शब्द बनने के बाद कनौर शब्द के क वर्ण में अ स्वर के स्थान पर इ स्वर के आने एवं न के द्वितवीकरण के फलस्वरूप मध्य में न व्यंजन के आगम होने पर किन्नौर शब्द बना है। इसी तरह डॉ. विद्याचन्द ठाकुर ने सोमसी जून-अक्तूबर १९९७ के लाहुल स्पिति विशेषांक में शब्द व्युत्पति के परिप्रेक्ष्य में 'लाहुल स्पिति एवं केलंग' नामक लेख में स्पिति का सम्बन्ध अश्वपति से जोड़ते हुए लिखा है कि अश्वपति शब्द की उच्चारण यात्रा से पहले मध्य के व वर्ण के अ स्वर के लोप होने पर अशुपति शब्द बना गया है। तत्पश्चात् आदि स्वर अ और मध्य स्वर उ के लोप तथा मध्य स्वर अ के इ में तालव्य श के दन्त्य स में परिवर्तन से स्पिति शब्द प्रचलित हुआ। कुल्लू का पुराना नाम कुलूत था ये किस तरह कुल्लू बना इसके बारे में वे लिखते है कि कुल्लू वास्तव में कुलूत का पुराना नाम कुलूत था ये किस तरह कुल्लू बना इसके बारे में वे लिखते है कि कुल्लू वास्तव में कुलूत शब्द का संक्षिप्त रूप है। जिसमें त अक्षर का ह्रास तथा पूर्व व्यंजन का द्वितव हो गया और कुल्लू नाम से प्रचलित हुआ।

उनका ये भी मानना था कि हिमाचल प्रदेश का लोकजीवन पूर्णतया ऋषि और कृषि संस्कृति पर आधारित है। हिमाचल प्रदेश के अधिकांश स्थान नाम ऋषि संस्कृति के पोषक हैं तथा भौगोलिक संरचना में वर्णित अनेक स्थान नाम कृषि कार्य के विविध रूपों का ज्ञान करवाते हैं।

यद्यपि ठाकुर विद्याचन्द अपनी नौकरी के दौरान कुल्लू से बाहर ही रहे। परन्तु उनका दिल हमेशा कुल्लूवी संस्कृति उन्नयन के प्रयास में ही रहा। कुल्लू सहित हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति तथा बोली पर उन्होंने विपाशा, सोमसी, भृगुतुंग, चन्द्रताल, शैलपुत्र आदि पत्रिकाओं में अनेकों शोधपरक लेख लिखे। जिनमें 'विशुव का त्योहार विशु, बसोआ, मण्डी जनपद के लोकनाट्य, जमलू का मलाणा राज्य, हिमाचल के जिलों के नाम की व्युत्पत्ति, कुल्लूवी लोकोक्तियों में लोकदेवता,

लोकसाहित्य में त्रिगर्त संदर्भ, लोकगीतों की धरती आदि शोध लेख प्रमुख है। कुल्लू की साहित्यक संस्था साहित्य कला परिषद् में वे सक्रिय भूमिका में रहे। साहित्य कला परिषद् कुल्लू द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'कुल्लू व लाहुल स्पिति के वस्त्राभूषण एवं खानपान' में इनके शोध परक लेख 'कुल्लूई लोक साहित्य में खानपान और वेषभूषा' नामक मार्गदर्शन में संगम ने 'कुल्लू के सर सरोवर' तथा 'पश्चिमी हिमालय में नाग परम्परा' नामक पुस्तकें प्रकाशित हुई। जिनमें महाराजा कोठी के सर सरोवर नामक अपने लेख में वे सर सरोवर के संरक्षण के सम्बन्ध में लोक कहावत का उल्लेख करते हुए लिखते है – ''जै सोठी सम्हालिया नी चलै ता सौरा शुकदैया होर घौरा मुकदैया दरी नी लागदी अर्थात् यदि हम सावधानी से उचित आचरण न करें तो सर सरोवरों को सूखने में तथा घर के बर्बाद होने में देरी नहीं लगती। इसी तरह पश्चिमी हिमालय में नाग परम्परा नामक पुस्तक में अपने लेख 'लोकमान्यता में नाग' तथा भारतीय इतिहास संकलन समिति कुल्लू द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'कुल्लू की ऋषि परम्परा' में इनके लेख 'महाराजा के देऊजमलू और महर्षि पराशर – देऊ पड़ासर कमांद नामक लेख उनकी विद्धता के परिचायक है। कुल्लू की ऋषि परम्परा नामक पुस्तक के आमुख में उन्होंने लिखा है 'ऋर्षि ओर मुनि भारतीय संस्कृति की प्राण शक्ति है। जिन्होंने हमारे आदि ग्रन्थ वेदों के मन्त्रों को साक्षात् दर्शन प्राप्त किया है, वे ऋषि हैं – **ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः दर्शनात् ऋषि उच्यते** और जिन मनस्वियों ने वैदिक मन्त्रों पर गहन मनन् किया, वे मुनि कहलाए – मननात् मुनि उच्यते।

कुलूत संस्कृति विकास मंच द्वारा प्रकाशित पत्रिका भृगुतुंग में भी उनका योगदान सराहनीय रहा है। कुल्लू दशहरा उत्सव समिति द्वारा प्रकाशित कुल्लू के देवी-देवता नामक संदर्भ ग्रन्थ के भी वे लेखक सदस्य रहे हैं। उन्होंने उतरी क्षेत्रीय संस्कृतिक केन्द्र पटियाला द्वारा ' हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर' विषयक लेखमाला में चम्बा, मण्डी और कुल्लू के लोकनृत्यों पर विशिष्ट शोधात्मक लेख लिखे। कई वर्षा तक कुल्लू दशहरा में आयोजित की जाने वाली लोकनृत्य प्रतियोगिता में भी डॉ. विद्या चन्द ठाकुर निर्णायक की भूमिका में रहे।

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर हिमाचल कला संस्कृति भाषा आकादमी में दो बार सचिव रहे। उनके सचिव रहते हुए अकादमी ने भारतीय संस्कृति के जननायक श्री राम के बारे में 'हिमाचल प्रदेश में प्रचलित राम के लोक प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित करवाकर राष्ट्र चिन्तन का परिचय देते हुए प्रदेश की अमूल्य थाती को लुप्त होने से बचाया। रामकथा के लोकप्रसंग में वे लिखते हैं कि मर्यादा पुरुषोतम भगवान राम के प्रति भारतीय लोकमानस के साथ-साथ हिमाचली समाज में भी अटूट आस्था है। वास्तव में श्री राम का चरित्र ही भारतीय संस्कृति है, जिसकी मर्यादा संपूर्ण विश्व में समादृत है। हिमाचल प्रदेश के गांव-गांव में रामकथा का व्यापक प्रचलन है। इन ग्राम्य कथाओं में लोकमानस ने अपने आस-पास के भली प्रकार जाने-पहचाने आचार-व्यवहार तथा वातावरण का इतना सुन्दर मनोहरी समावेश किया है कि भगवान राम अपने बीच के अपने ही आदमी लगते हैं। जिनका यहां की माटी से बड़ा गहरा रिश्ता है। लोकमानस के लोकतत्वों का संयोजन इतने रोचक एवं अनूठे ढंग से किया है कि रामकथा का मूल स्वरूप कहीं भी खण्डित नहीं होता और कथा की मौलिक धारा के साथ दूध और पानी की भान्ति एक अद्भुत समन्वय स्थापित होता है।

सोमसी में नवसंवत्सर विशेषांक, लोक भजन विशेषांक इनकी लोक संस्कृति के प्रति गहरी रूचि के द्योतक हैं।

भाषा विभाग के उपनिदेशक के पद से सेवानिवृत के बाद भी डॉ. विद्याचन्द ठाकुर लेखन में सक्रिय रहे और आजकल हिमाचल प्रदेश की सनातन परम्परा पर पुस्तक लेखन के काम में जुटे हुए थे। वे कहा करते थे कि मैं सारी नौकरी में कुल्लू से बाहर ही रहा अब सेवानिवृत के बाद देव परम्परा के सभी आयोजनों में शामिल होना चाहता हूं। देव अनुष्ठानों में पूरी भागीदारी तथा समाज में विवाह-शादी, गमी-खुशी में स्वयं भाग लेते रहे। गांव के लोगों के साथ उठना-बैठना और परम्पराओं का निर्वहन करने से लगता था कि वे अपने शेष जीवन में माटी के साथ पूरी तरह जुड़ रहना चाहते थे। सन् १९९८ में जब कुल्लू में उनके मार्गदर्शन में भारतीय इतिहास संकलन समिति की जिला ईकाई का गठन हुआ, तो माननीय इतिहास पुरुष स्व. ठाकुर राम सिंह के दिशा निर्देशानुसार कुल्लू ईकाई ने कुल्लू के देवी-देवताओं पर शोध कार्य करना आरम्भ किया परिणामस्वरूप 'कुल्लू की ऋषि परम्परा' नामक पुस्तक प्रकाश में आई। उनके मार्गदर्शन में उस समय बहुत से लेखक समिति से जुड़े और आज वे सभी प्रतिष्ठित लेखक बन चुके हैं। हालांकि डॉ. विद्याचन्द ठाकुर कविता नहीं लिखते थे, परन्तु कवियों को बराबर प्रोत्साहित करते थे। मेरे आग्रह पर एक बार उन्होंने कविता की कुछ पंक्तियां लिखी थी, जिन्हें मैं यहां देना मुनासिब समझता हूं —

शब्द
हो जाते हैं नष्ट
स्नेह भाव बना रहता है
शब्द से पकड़ने के लिए
जिसे ढूंढने पड़ते हैं
और भी शब्द।
फिर कभी शब्द पकड़ नहीं पाते,
उस अपलक दृष्टि को
जो रहे भाव को
फूलों लदी नाव की तरह
बहने देती है भीतर
चुपचाप ऐसे ही
क्या नहीं ले आते शब्द
जब कल्पना लुप्त हो जाती है
और फिर खामोशी की चट्टान तले रह जाते हो
तुम केवल मात्र तुम।

यद्यपि आज डॉ. विद्याचन्द ठाकुर सशरीर हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु उनकी आत्मा और उनके विचार हमेशा हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे।

गांव परगानू, डाकघर भून्तर
जिला कुल्लू (हि.प्र.)
पिन : १७५१२५

ठाकुर विद्याचन्द और उनका कार्यक्षेत्र

डॉ. वेद प्रकाश अग्नि

ठाकुर विद्याचन्द जी भारतीय संस्कृति और समाज की सेवा लगभग पांच दशाब्दी से अधिक लोक यात्रा में एक युगान्तरकारी कर्मठता और समाज के प्रति दृढ़निष्ठा, आत्मसमर्पण और सेवा भाव रखने वाले एक यशस्वी ध्येय निष्ठ और राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत थे। जिनका सम्पर्क उस काल के राष्ट्रचेता ठाकुर रामसिंह जी से ३० वर्ष पूर्व हो गया था। ठाकुर रामसिंह जी की सत्प्रेरणा से उन्हें राष्ट्रसेवा, समाजसेवा और संस्कृति की मूल चेतना से जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ। लगभग दो दशाब्दी तक हिमाचल सरकार के भाषा संस्कृति विभाग में सेवा करते हुए, उन्होंने उपनिदेशक पद से सेवानिवृति के उपरान्त अपनी सेवाएं नेरी को अर्पित कर दी और इसके सर्व-समावेश शोध संस्थान एवं समग्र विकास में तन मन धन से जुटे रहे। उनके साथ इन पंक्तियों के लेखक का सम्पर्क लगभग पांच दशाब्दी से भी अधिक है। इस बीच हम लोग न जाने कितने ही कवि सम्मेलनों, विचारगोष्ठियों और सांस्कृतिक चेतना के समारोहों में एक दूसरे से मिलते रहे। विमर्शपूर्ण परामर्शों के पश्चात् यूं तो समस्त भारतीय राष्ट्रीय चेतना के अनेक पक्षीय संदर्भों पर विचार विनिमय होता रहा। किन्तु विशेष रूप से हमारे विचार विमर्श के केन्द्र बिन्दु के रूप में हिमाचल का विकास, समाज एवं संस्कृति के उतार चढ़ाव रहा करते थे। ऐसे अवसरों पर मैंने अनेक बार विद्याचन्द ठाकुर से इन विषयों पर गंभीर विचार किया जिससे मुझे उनकी तलपर्शनी दृष्टि का परिचय मिला। वे किसी भी बात पर गतानुगतिकता के संदर्भ में स्वीकार करने के पक्षधर नहीं थे। वे उसे सत्य, इतिहास और समय के उत्थान और पतन की परिधि के परिप्रेक्ष्य में विचार विमर्शपूर्वक तोल कर उसे जब तर्क की कसौटी पर खरा पाते थे, तो ही उसे प्रामाणिकता के साथ ग्रहण करते थे। अथवा उसे अपने सम्पादकीय लेखन में स्थान देते थे, अन्यथा नहीं। इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र, समाज और संस्कृति के विषय में इतिहास और सत्य को प्रामाणिक मानकर ही अपना कदम उठाते थे अन्यथा नहीं। इस संदर्भ में प्रायः जब चर्चा चलती तो वे अक्सर ठाकुर रामसिंह जी का संदर्भ देकर कि भारतीय संस्कृति के राष्ट्रीय सत्त्व के और वैदिक सनातन हिन्दू धर्म के जो मूल तत्त्व हैं उनका सारा स्वरूप जो कई प्रकार की विकृतियों से अप्रभावित रहा है, वे काफी सप्राण और सारस्वरूप रूप में हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में विशेषतया कांगड़ा और कुल्लू घाटी की जनपदीय चेतना में अब भी मूल रूप से सुरक्षित है। यद्यपि कालक्रम के प्रभाव से स्थानीय बोलियों के रूपान्तरण के कारण भिन्नता सी दिखाई देती है किन्तु उसकी अन्तरात्मा सनातन वैदिक स्वर को मुखर करती स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। कुल्लू घाटी की दोउ और गुर की परम्परा स्पष्टतः ही इस बात का संकेत करती है कि ऋषि, देवता, छन्द एवं मन्त्र ये सब अभिन्न हैं। एक दूसरे से पृथक नहीं हो सकते। एक की भी दृढ़ प्रतीति और अनुभूति होने पर अन्य के प्रकाश की अनुभूति

आवश्यमेव होती है। इस क्षेत्र की सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक चेतना जो कि देवपूजन परम्परा उत्सवों को मनाने के रूप में, लोक कथाओं के रूप में, लोकगाथाओं के रूप में लोक नृत्य एवं वाद्य मन्त्रों के रूप में आज भी लोक मानस के गले का हार बना हुआ है। उसमें वो सब कुछ प्राणवान् विद्यमान है, जिसका उद्धोष वैदिक ऋचाओं के साथ ऋषियों मुनियों ने प्रलय के पश्चात् वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ के साथ ही मन्वालय अर्थात् मनाली से प्रारम्भ कर जालन्धर तक इतिहास के आदि काल में जिसका उद्धोष किया था। जिसकी अक्षुण्ण परम्परा भले ही भाषाई रूपान्तरण के कारण समय के प्रवाह में बदली हुई नजर आए लेकिन उसकी मूल चेतना सनातन आर्य हिन्दू धर्म की आध्यात्मिक योग चेतना की अखण्ड धारा को प्रवाहित करती चली आ रही है और उसमें भारतीयता का सारस्वरूप संरक्षित है। त्रिगर्त प्रदेश के इस भू-भाग में ऐसा बहुत कुछ सारगर्भित कालजयी और विश्वजनीन है जो आने वाली मानव संस्कृति का कण्ठहार हो सकता है और उज्ज्वल जीवन भविष्य का संबल बन सकता है। यहां कहने की जरूरत नहीं है, मोटे तौर पर यदि हम स्थानों का ही नाम लें, तो उससे इस प्रदेश की वैदिक चेतना का बोध आसानी से हो जाएगा। यदि आप कांगड़ा वज्रेश्वरी देवी को नमन करने के लिए जाते हैं, तो आपको पुराना मटौर और नया मटौर से गुजर कर जाना पड़ता है। आज हम भूल चुके हैं कि मटौर वास्तव में क्या है। वज्रेश्वरी देवी तक पहुंचने से पहले जिन देवी द्वारों को पार करना पड़ता था वे उस समय मातृपौर (Gateway to Vjreshvari Devi) और यदि चामुण्डा हो जाना है तो आपको पुराने रास्ते से जदरांगल से होकर जाना पड़ता है। ये जगरांगल और कुछ नहीं है पुरा यतिर्जांगल/ जतिर्जांगल है। जो लोक देवी दर्शन के अभिलाषी हैं वो निश्चय ही जदरांगल के साधना स्थलों में योगाभ्यास करके आत्मानुभूति के लिए जाते हैं और आगे चलते पपरोला जो वास्तव में पाप अर्गला का बिगड़ा हुआ शब्द है, इस बात का द्योतक है कि इन शान्त वादियों में अध्यात्म चेतना का साधक योग द्वारा पाप मुक्त होने पर पाप अर्गला से मुक्त होकर जब वैद्यनाथ पहुंचता है तो साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है। आगे बढ़कर वह योगी योगेश्वर बनाता है अतः आगे का क्षेत्र बिगड़कर योगेन्द्र नगर (जोगेन्द्रनगर) बना है। इस तरह जब वे योगाभ्यास करते करते माया के संदर्भ से यानि कुल देवी के चक्र से बाहर निकल कर कुल्लू में पहुंचता है तो वो कुल्लोतर हो जाता है इसे ही कुल्लूत देश कहा गया है। इस तरीके से इस त्रिगर्त देश में समस्त भारतीय सनातन परम्परा की साधना की यह सर्वश्रेष्ठ स्थली सृष्टि के आदि काल से वरेण्य और मान्य रही है इसमें इसका स्वरूप भले ही समय के प्रवाह के साथ बदला हुआ ढका हुआ व कुहासे में लिपटा हुआ प्रतीत होता है लेकिन इसकी मूलचेतना आज भी वैदिक सनातन परम्परा का मञ्जू उद्धोष करती है। जरूरत है कर्मठ अनुसन्धित्सुओं की जो इसके सारगर्भित को पुनः प्राणवान बनायें और भारतीय चेतना धारा की अग्रगामिनी पथगा के रूप में इसे उजागर करने का भगीरथ प्रयत्न करें।

बहुत शौक से सुन रहा था जमाना, तुम्हीं सो गए दास्तां कहते कहते।।

गांव व डा. दाड़ी,
धर्मशाला (हि.प्र.)

नाम की सार्थकता

बनवीर राणा

वर्ष २००५ में मेरे पा हिमाचल प्रान्त का सह प्रान्त प्रचारक का दायित्व आया। केन्द्र मेरा हमीरपुर हुआ। इस कारण नेरी शोध संस्थान के कार्य के साथ एक निकट का सम्बन्ध रहा है। हम सब के आदर्श श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी से वहीं पर भेंट होती थी।

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर का नाम साहित्य जगत में एक जाना पहचाना नाम है। मेरी उनसे भेंट नेरी शोध संस्थान में ही हुई। मातृवन्दना मासिक पत्रिका के लिए किए जाने उनके योगदान की भी मुझे जानकारी थी। हिमाचल प्रदेश में संघ कार्य नाम से एक लघु पत्रिका जब प्रकाशन हुआ उसके स्वरूप तथा सामग्री चयन का कार्य भी उन्होंने ही पूरा किया था।

नेरी शोध संस्थान के वार्षिक आयोजनों, गोष्ठियों तथा बैठकों में जब डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी से मिलना होता था तो यह देखकर कोई उनकी सादगी एवं सहजता से अनुमान नहीं लगा सकता थे कि उनका व्यक्तित्व कितना विशाल है। वे शुद्ध राष्ट्रवादी चिन्तक थे।

उनकी विषयों पर सारगर्भित चर्चा, तार्किता तथा प्रामाणिक तथ्यों सहित लेखन कार्य और समय-समय पर कठोरता से संस्था के हित में बात करना अपने नाम को सार्थक किया उनका सहज सरल व्यक्तित्व, संयमित एवं सदैव समर्पित जीवन भावी पीढ़ियों को उन्नत काल तक प्रेरणा देता रहेगा।

क्षेत्र प्रचारक, उतर क्षेत्र

जैसा नाम वैसा काम

किस्मत कुमार

देवभूमि हिमाचल की कुल्लू घाटी में जन्मे श्री विद्या चन्द ठाकुर जी के आकस्मिक निधन का दुखद समाचार मिलने पर ऐसा लगा जैसा मानो अचानक कोई बहुमूल्य एवं आत्मीय कुछ खो गया। जीवन में किसी चीज की कमी हो गई, फिर से उसको प्राप्त करना भी असंभव सा लग रहा था। मन में आई अधीरता, उस कारण को भी ढूंढ रही थी – जिसके कारण उनके बिछुड़ने से मन बैठता जा रहा था, तब ध्यान में आया कि संघ कार्य में 'स्वयंसेवक' भाव से जीवन जीने वाला व्यक्ति सहज रूप से ही हमारा कितना अपना हो जाता है। मैं संघ कार्य करते-करते डॉ. विद्या चन्द जी के भी संपर्क में आया। ठा. जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी (हमीरपुर) ने इस संपर्क को पारिवारिक एवं आत्मीय भाव में बदल दिया। जीवन में संबन्धों का आधार भौगोलिक सीमाओं को भी पार कर अपना पूरा प्रभाव दिखाता है – ऐसा ठा. विद्या चन्द जी के अचानक बिछुड़ने से अनुभव हुआ।

ठाकुर जी अद्भुत प्रतिभा के धनी थे, सामान्य, सहज दिखने वाला व्यक्ति अपने हृदय में समाज के लिए हमेशा कुछ कर गुजरने का, दिशा देने का विशाल लक्ष्य लेकर अपना जीवन सामान्य रूप से जी रहे था।

'विद्या के धनी' विद्या चन्द जी सचमुच में 'विद्या की देवी के कृपा पात्र थे। 'इतिहास दिवाकर' के सम्पादकीय पृष्ठ को पढ़ने मात्र से उनके कलम के धनी होने का प्रमाण चिरस्थायी रूप से विद्यमान हो गया है। 'ठाकुर' अर्थात् सबके प्रति दयालु, अपनेपन का अहसास करवाने वाला उनका स्वभाव उनके नामकरण 'विद्या चन्द ठाकुर' को भी सार्थक एवं अंलकृत करने वाला बन गया।

कहते हैं किसी भी व्यक्ति के प्रभाव का पता उसके अभाव के होने पर चलता है। विद्या चन्द ठाकुर जी के द्वारा शोध संस्थान में किया गयाा कार्य इसकी नींव को मजबूत करने का कार्य कर गया।

इतिहास का गहरा अध्ययन, विषयों की परवाह एवं संगठन की कार्य पद्धति को 'कलम' के सांचे में ढालकर जिस प्रकार वे प्रस्तुत करते थे – उस कार्य को कोई दैव कृपा प्राप्त व्यक्तित्व ही कर सकता है। इतिहास साहित्य लेखन के क्षेत्र में उनके द्वारा शुरू की गई परम्परा को जीवन्त बनाकर रखने में वो आत्मीय रूप से साथ ही रहेंगे क्योंकि विद्या चन्द ठाकुर जी एवं नेरी शोध संस्थान – वास्तव में आत्मीय रूप से एक ही हो चुके थे।

गांव व डा. बलसीना,
तह. बरठीं, जिला बिलासपुर (हि.प्र.)

उच्च आदर्श विद्वान

विजय मोहन कुमार पुरी

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर का जीवन व्यवहारिक आदर्शों का साक्षात दर्शन रहा है। वे भारतीय दर्शन के ज्ञाता, लोकजीवन के व्यवहार करता तथा शब्द साधना के मर्मग्य विद्वान थे। नेरी शोध संस्थान का वैचारिक पक्ष एवं त्रैमासिक शोध पत्रिका इतिहास दिवाकर का शैशव अवस्था से वर्तमान तक लाने में उनका पूर्ण एवं सक्रीय योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर से मेरा सम्पर्क ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी में ही आया। परन्तु मेरे घनिष्ठ मित्र विद्वान डॉ. वेद प्रकाश अग्निहोत्री जी उनसे पूर्व से ही परिचित थे। श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी ने शोध संस्थान के अध्यक्ष पद का दायित्व जब मुझे दिया तो विचार मन में आया कि मुझे किस प्रकार की टोली के साथ कार्य करना है? ठाकुर जी की योजना रचना का मुझे पुराना अनुभव था जब हमने सरस्वती नदी की खोज के लिए लम्बा और सघन प्रवास किया जो आज फलीभूत हो गया है।

नेरी शोध संस्थान के कार्य के लिए डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी का चयन बड़ी दूरदर्शिता से किया गया था। संस्कृत तथा भाषा विज्ञान के विद्वान होने के साथ लोक संस्कृति और इतिहास पर उनकी गहरी पकड़ थी। उन्होंने भारत के इतिहास को भारतीय नजर से देखा और समझा। वे कहा करते थे कि भारतीय इतिहास को समझना है तो सर्वप्रथम अपनी जड़ों को समझों। हमारी संस्कृति क्या है? उसका व्यवहारिक पक्ष क्या है। किसी भी विषय का अध्ययन करते हुए वे उसकी मूल जड़ में जाते थे। नेरी शोध संस्थान के सफल राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन की रूपरेखा को बांधने वाले डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी थे।

जीवन की सादगी और व्यवहार के तो उनके परिचित सभी कायल थे। अपनी बात को भी इसी तरह से रखाना कि जिससे किसी को अंश मात्र भी परेशानी न हो। नेरी शोध संस्थान में घण्टों उन से चर्चा हुआ करती थी। समग्र रूप से विषय का प्रतिपादन ऐसा होता था कि सभी उत्साह और विश्वास के साथ कार्य पर जुट जाते थे।

गत् वर्ष डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी, श्री चेतराम जी और राजेन्द्र शर्मा जी तीनों मेरे आग्रह पर हमारे निवास स्थान धर्मशाला में पधारे थे। उन दिनों ठाकुर जी शोध संस्थान के कार्य से नेरी में आए हुए थे। मेरा सौभाग्य था कि ऐसा पवित्र व्यक्तित्व हमारे घर आए। उस दिन शोध संस्थान के विविध पहलुओं पर हमारी लगभग तीन घण्टे चर्चा हुई। ठाकुर विद्याचन्द जी लगातार आग्रह कर रहे थे कि धीरे-धीरे शोध संस्थान के कार्य के लिए नई टीम दिए जाने की आवश्यकता है। नई टीम को कार्य देने

से उन्हें अपने दम पर कार्य करने का एहसास होने लगेगा। पिछे से हम उन का सहयोग एवं मार्गदर्शन करते जाएंगे। हम सब लोग इस बात पर सहमत थे।

महापुरुषों की दूरदर्शिता इस बात से परिलक्षित होती है कि उन्हें भविष्य का आभास होने लगता है। वे उस ओर संकेत करने लगते हैं जो आगे भविष्य में घटित होने वाला है। उपरोक्त बातों पर विचार करना और उस क्रिया रूप देना ऐसे श्रेष्ठ कार्यकर्ता की विशिष्टता होती है।

अनेक बार ऐसा हुआ कि मैं अपने निजी कारणों से संस्थान के महत्त्वपूर्ण आयोजनों में रहने में असमर्थ रहा। उन सब आयोजनों में डॉ. विद्याचन्द ठाकुर का रहना ही कार्यक्रम की सफलता को निश्चित कर देता था। इस में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे मात्र कार्यक्रम में उपस्थित होने के लिए शोध संस्थान में नहीं आते थे बल्कि उस कार्यक्रम का परिणाम क्या होने वाला है। उससे नये विद्वान, लेखकीय टोली आदि विविध आगमों के लिए हमें निष्ठावान कार्यकर्ता मिलने वाले हैं या नहीं। ऊर्जावान और उत्साही विद्वानों के लिए उन्होंने फिर समय देना। उनकी समस्या का समाधान करना तथा किस विषय के कार्य के लिए कहां से सहयोग प्राप्त हो सकता है उस में सहयोग करना उनके कार्य का क्रम रहता था।

ठाकुर विद्याचन्द जी का असमय जाना हम सब का विद्वत जगत के लिए कष्टकारी है। नेरी शोध संस्थान की वैचारिक पक्ष की नींव वे सुदृढ़ता से रख गए है। अब इस नींव पर काम करना किसी के लिए भी आसाध्य नहीं है। इस नींव में प्रथम पुष्प श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह ६ सितम्बर, २०१०, द्वितीय पुष्प ५ अगस्त २०१७ स्वर्गीय चेतराम जी और तृतीय पुष्प ३१ अक्तूबर, २०१७ को डॉ. विद्याचन्द ठाकुर का चले जाना हम सब के लिए कष्ट प्रद है। हम इनके दिखाए मार्ग पर कार्य को पूर्णनिष्ठा और विश्वास से कार्य का आगे बढ़ाते जाएंगे। यही मेरी उनके लिए श्रद्धाञ्जलि है।

अध्यक्ष, शोध संस्थान नेरी
हमीरपुर (हि.प्र.)

मेरे प्रेरणा स्रोत

बीरबल शर्मा

यह बात शायद १९८५-८६ की रही होगी। कालेज रोड मंडी में मेरे स्टूडियो पर एक ठेठ पहाड़ी सा दिखने वाला शख्स आकर खड़ा हुआ और बड़ी ही दिलचस्पी से इधर-उधर प्रदर्शित छायाचित्रों को देखने लगा। मैं अपने काम में व्यस्त था शायद जिस कारण से उन्हें ज्यादा तवज्जो नहीं दे पाया। जब वे स्टूडियो के एक नोटिस बोर्डनुमा डिस्पले दिवार पर लगे चित्रों को बड़ी ही गहराई से देखते रहे तो काम छोड़ कर मैंने पूछ लिया जी बताएं आप क्या चाहते हैं। उन्होंने कहा यह जो पराशर का फोटो आपने लगा रखा है यह तो अलग अंदाज का है यह मुझे बहुत अच्छा लगा, एक कापी मुझे भी चाहिए। मैंने १९८३ में अपने जीवन की सबसे पहली यात्रा मंडी जिले के पराशर की ही की थी ऐसे में वहां के अच्छे चित्र जो उन दिनों श्वेत श्याम ही होते थे मेरे पास थे जिनमें से एक चित्र मैंने अपनी दुकान में लगाए बोर्ड पर चिपका रखा था। मैंने उत्सुकतापूर्वक उनका परिचय जानना चाहा तो उन्होंने कहा कि वह यहां पर जिला भाषा अधिकारी के रूप में आए हैं। मुझे आपके इस फोटो में अलग एंगल से प्राचीन धरोहर की झलक दिखती है। बातों बातों में लगा कि यह कोई बड़ा संस्कृति प्रेमी अधिकारी है जो मंडी के लिए कुछ करना चाहते हैं। डॉ. विद्याचन्द से यह पहली मुलाकात थी और एक अधिकारी ने मुझ जैसे छोटे से छायाकार जो बड़ी मुश्किल से अपना स्टूडियो चलाकर परिवार का गुजारा कर रहा था को ऐसे प्रेरित किया, मेरे जीवन को ऐसा मोड़ दिया कि आज मैं जो कुछ भी हूं, मेरे पास जो हिमाचल प्रदेश की प्राचीन धरोहरों, मेलों, त्योहारों, उत्सवों, नृत्यों, नाटकों, लोक नाट्यों, प्राचीन मन्दिरों, पहाड़ों, पर्वत मालाओं पर विराजमान लोक महत्व के स्थलों, कुदरती झीलों, सुन्दर दृश्यावलियों, कबाइली व कठिन क्षेत्रों के लाखों लाख छायाचित्रों का संग्रह है वह इसी ठेठ पहाड़ी साधारण से दिखने वाले डॉ. विद्याचन्द ठाकुर की प्रेरणा का परिणाम है। पांच साल तक डॉ. विद्याचन्द ठाकुर मण्डी जिला में रहे। उनकी प्रेरणा व आग्रह से मैंने कभी अकेले तो कभी उनके साथ जाकर पैदल या फिर जहां तक हो सकता था स्कूल पर पूरे मंडी जिला का दौरा किया। प्राचीन मन्दिरों, स्मारकों व अन्य महत्वपूर्ण स्थलों का छायांकन किया। जिस पर उन्होंने भाषा विभाग व कुछ महकमों के सहयोग से १९८८ में मंडी जिला की सांस्कृतिक गरिमा के शीर्षक से गांधी भवन मंडी में छायाचित्र प्रदर्शनी लगवाई जिसे बेहद पंसद किया गया। फिर सिलसिला चल पड़ा, डॉ. साहब ने पूरे प्रदेश के भ्रमण के बाद उन्होंने वाईडब्ल्यूसीए हॉल शिमला में पूरे प्रदेश के छायाचित्रों की प्रदर्शनी लगवाई। फिर यह सिलसिला ऐसा चला कि वह चाहे शिमला में रहे या कुल्लू व हमीरपुर में, हमारा रिश्ता भाईयों जैसा हो गया जो लगातार प्रगाढ़ होता गया। डॉ. विद्या चन्द के समस्त संस्मरण लिखने लगूं तो हजारों पन्ने

बन जाएंगे मगर संक्षिप्त में वर्णन करूं तो उनके साथ मैंने डोडरा क्वार, बड़ा भंगाल, पांगी, गरवीं दरैहट, मानतलाई, खीर गंगा, दशौहर, भृगु लेक, चौहारघाटी, भुवू जोत, कमांद हवाई स्याह, पराशर कुल्लू कमांद, पीज श्रीखंड, किन्नर कैलाश, चन्द्रताल, स्पिति, चूढ़ चांदनी सिरमौर, सरांहा चौपाल, शिरगुल, साया, रेणुका, मणीमहेश, शिकारी, मलाणा, अनसर, बालू, चंन्द्रखणी जोत, थमसर जोत, साच पास, कमरूनाग, सरयोलसर समेत पूरे प्रदेश का भ्रमण किया। एक बार तो हम सुबह चार बजे दोनों स्कूटर पर बैठे और पहले बैजनाथ, फिर मसरूर, चिन्तपूर्णी, देहरा, परागपुर, नादौन व हमीरपुर होकर २४ घंटे लगातार चलते हुए मंडी पहुंच गए। लवी मेले में कई बार स्कूटर पर गए, कई बार हमारा सामना मौत से हुआ मगर वह एक ऐसी शख्सियत थे कि न कभी गुस्सा, न कोई अधिकारियों जैसी बात, न खाने का फिक्र, न सोने का, जो मिला जैसा मिला खा लिया, पहन लिया व ओढ़ लिया।

एक बार लवी से वापस आते समय आनी से आगे जैसे ही निकले तो अंधेरा हो गया। सोचा २० किलोमीटर उपर खनाग के रेस्ट हाउस तक पहुंच जाएंगे, मगर सड़क इतनी खराब थी कि स्कूटर आगे बढ़ने का नाम न ले। दो तीन जगह रूक कर ठहरने के बारे में पूछा मगर कोई ठहराने को तैयार नहीं हुआ। बाद में एक खोखे में जबरदस्ती ही बैठ गए और वहां पर चाय आदि बनाने वाले दुकानदार से कहा कि हम तो यहीं रात काटेंगे चाहे कुछ भी हो। दुकानदार का नाम सूरत राम था। उसने देखा कि ये तो अब जाएंगे नहीं तो कहा पैसे लगेंगे, हमने कहा दे देंगे, किसी तरह उसके बिस्तर पर रात काटी, उसने चाय भी पिलाई, जलेबी भी खिलाई, सुबह फिर चाय पिलाई और जब उससे पैसे पूछे तो कहा २० रुपये दे दो। हम हैरान हुए और पैसे के साथ-साथ सूरत राम को अपने साथ रखी दो कैनियां जो तेल डालकर लाई थी वह भी उसे दे दी। यह बात १९८७-८८ के आसपास की होगी तब आनी जलोड़ी जोत वाली सड़क की हालत बहुत खराब थी, जैसे तैसे हम खनाग तो पहुंच गए मगर आगे स्कूटर खिसकने का नाम न ले। इस पर डॉ. विद्याचन्द जी ने कहा कि वह यहां से पैदल सीधे सरयोलसर के लिए चढाई चढ़ते हैं आप किसी तरह स्कूटर लेकर जलोड़ी जोत पहुंचो और वहां स्कूटर खड़ा करके पैदल सरयोलसर निकला तो वहां डॉ. विद्याचन्द पहुंच चुके थे। उनके आह्‌वान पर ही पहली बार सरयोलसर देखा। उन्हें पूरे प्रदेश का इतना ज्ञान था कि कौन सी जगह क्या महत्व रखती है।

एक बार हमारा दल चौपाल होकर सरांहा पहुंचा। रात को सराय में ठहरे। अफसर होकर भी कभी वह सरकारी सुविधा की इच्छा नहीं रखते। रेस्ट हाउस में ठहरने की भी मंशा नहीं रखते, जहां मिला रात काट ली। सुबह बिजट महाराज के दर्शन करके चूड़धार पहुंचे और वापसी पर पुलवाहल की ओर जाते हुए जंगल में फंस गए। रात हो गई तो वहां भेड़पालक मिले और उनके ही डेरे में जैसे तैसे आग्रह करके रात काट ली। दूसरे दिन वही गडरिया हमें पुलवाहल के रास्ते पर छोड़ने आया। यह सब उनके स्वाभाव, काम करने के तरीके, गजब की सादगी, अपनापन व बुद्धिजीवी प्रभाव के कारण ही हो पाता था। अपने दौरों में हमने कई बार रातें डुआरों यानि पत्थरों के नीचे जैसे मानतलाई के दौरे के

दौरान पांडु पुल में दो रातें रहे, किन्नर कैलाश के रास्ते में आते जाते दो रातें पत्थर के नीचे गुजारी और भी कई दौरों में गुफाओं में रहे मगर कभी नहीं लगा कि अपने साथ एक ऐसा विद्वान है, अधिकारी है जिसे कोई कष्ट का आभास तक भी हो रहा है। आज यदि हिमाचल दर्शन फोटो गैलरी जैसा कोई संस्थान मंडी में २०-२१ सालों से चल रहा है तो यह डाक्टर विद्याचन्द की प्रेरणा और मार्गदर्शन से ही संभव हुआ है। मुझे कहा कि मंडी जैसे शहर में प्राचीन मन्दिरों की भरमार है, लोग पैसे के बल पर मन्दिरों व स्मारकों को खराब कर रहे थे। एक संस्था होनी चाहिए जो पुरातत्व के संरक्षण बारे कोई काम करे। उन्होंने प्रयास किया और पुरातत्व चेतना संघ का गठन किया, उसे पंजीकृत करवाया और फिर इसी संस्था के माध्यम से मंडी के बिंदरावणी में कुल्लू मार्ग पर २४ अप्रैल १९९७ को गैलरी की स्थापना हुई। गैलरी बनाने के बारे में जब मैंने १९९३ के आसपास डॉ. विद्या चन्द जी से चर्चा की तो वह कुछ अनमने से लगे मगर मेरी बात को उन्होंने काटा नहीं। इसका खुलासा उन्होनें २३ अप्रैल १९९३ की रात को किया जब दूसरे दिन मुख्यमन्त्री ने इसका उद्घाटन करना था। रात को दो बजे के आसपास हम गैलरी की सैटिंग करके वापस घर आ रहे थे तो उन्होंने कहा कि सच बोलूं तो मुझे विश्वास नहीं था कि इस तरह की कोई गैलरी बनाई भी जा सकती है, मैं आपको निरूत्साहित नहीं करना चाहता था मगर मेरे मन में शंका थी कि यह कोई आसान काम नहीं है। गैलरी का कल उद्घाटन होना है। एक असंभव सा दिखने वाला काम हो गया, मुझे इस बात पर गर्व है कि जो आपने दो साल से सोचा था वह कर दिखाया। मैंने जवाब दिया कि मैंने तो यह गैलरी आपके ही सहारे से बनी, यदि आप कहीं शंका जता देते तो मेरा हौसला पस्त हो जाता।

३१ अक्तूबर २०१७ की सुबह मेरी जिन्दगी की एक काली सुबह थी जब सुबह सात बजे मुझे अनुराग पराशर का फोन आया कि एक दुखद खबर है कि डॉ. विद्या चन्द जी नहीं रहे। एक दम से अविश्वसनीय, न कोई उनके बीमार होने की खबर न अस्पताल में दाखिल होने की। कौन विश्वास करे, कौन सच माने मगर यही सच था, हमारा एक साथी, संस्कृति के पुरोधा विद्वान व भाई हमसे बिछुड़ चुका था। अपनी सेहत की परवाह न करते हुए भी तो काम किसी ने दिया उसे पूरा करने के लिए डटे रहना उस शख्स का असूल था। उनकी यादें मेरी व हमारी सारी टीम के साथ की गई १०० से अधिक यात्राओं की यादों के साथ ताजिंदगी रहेगी। कुछ महीने पहले मुझे कह गए थे कि जिन्दगी में की गई यात्राओं पर आधारित संस्मरण लिखो, मैं भी मदद करूंगा मगर अब सब जैसे छूट गया, टूट गया है जो शायद अब कभी जुड़ सकेगा। उनके लिए मेरी ओर से सच्ची श्रद्धाजंलि तभी होगी जब मैं अपने हिमाचल दर्शन फोटो गैलरी में एक कक्ष उनकी यादों से जुड़ा स्थापित कर लूंगा। मुझे नहीं लगता कि जीवन में अब कोई उनकी कमी को पूरा कर सकेगा। उनके जैसा बेटा, पति, बाप, भाई और दोस्त मेरी नजर में कोई बिरला ही होगा। मैं ईश्वर से कामना करता हूं कि उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

छायाकार एवं पत्राकार,
बीरबल स्टूडियो, जिला मण्डी (हि.प्र.)

स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते

डॉ. ओम दत सरोच

संस्कृत में यह प्रसिद्ध उक्ति प्रचलित है कि, राजा की पूजा एवं प्रतिष्ठा केवल अपने ही देश में होती है, जबकि विद्वान की पूजा एवं प्रतिष्ठा हर जगह होती है। यह उक्ति स्व. डा. विद्या चन्द जी पर पूरी तरह से चरितार्थ होती है। भाषा, कला, संस्कृति तथा साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान ठाकुर जी का संस्कृति व साहित्य के शोध क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान रहा है ।

ठाकुर विद्या चन्द जी के शोधपरक ग्रन्थों एवं लेखों के माध्यम से उनसे मेरा परिचय लम्बे समय से था। जब वे भाषा विभाग में व्युत्पतिविद् के पद पर थे, तथा उन्हें जिला हमीरपुर के भाषाधिकारी का दायित्व भी सौंपा गया था, तो उस समय संस्कृत-दिवस के आयोजन के उपलक्ष्य में हमारे संस्कृत महाविद्यालय चकमोह में पधारे। यह उनसे प्रथम साक्षात् भेंट थी। उनसे प्रथम भेंट में ही उनकी विद्वता व शोधपरक दृष्टि से मेरा परिचय हुआ। जटिल विषयों की सहज और सरल तरीके से व्याख्या करना ठाकुर जी की विशेषता थी। अगस्त, २००६ में भाषा विभाग द्वारा नयना देवी में आयोजित राज्यस्तरीय संस्कृत दिवस में ठाकुर जी ने मुझे मुख्य शोध-पत्र वाचन के लिये आमंत्रित किया। शोध-पत्र के विषय व मुख्य बिन्दुओं पर ठाकुर जी ने सहज-भाव से मेरा मार्गदर्शन भी किया, जिस कारण मैं यहां अपनी प्रस्तुति दे सका। भाषा-विभाग के विभिन्न कार्यक्रमों में ठाकुर जी से समय-समय पर भेंट होती रहती थी तथा विभिन्न विषयों पर उनसे चर्चा व मार्गदर्शन मिलता रहता था।

शोध संस्थान नेरी से जुड़ने के उपरान्त कई अवसरों पर उनसे विभिन्न विषयों पर चर्चा करने व मार्गदर्शन प्राप्त करने का सुअवसर मिला। शोधपरक लेखन के लिये उन्होंने निरन्तर प्रेरित किया। शोध संस्थान में "हिमाचल में ऋषि-परम्परा" व ''संकल्प पाठ" आदि विषयों पर संगोष्ठियां आयोजित करने में ठाकुर में ठाकुर जी की प्रेरणा व मार्गदर्शन रहा है। ऋषि मार्कण्डेय पर पुस्तक लिखने के लिये उन्होंने मुझे निर्देश व प्रेरणा दी तथा मुख्य बिन्दुओं पर मार्गदर्शन भी किया। उनकी प्रेरणा से इस विषय पर कार्य चल रहा है ।

भाषा, संस्कृति व साहित्य के पुरोधा व पारंगत विद्वान डॉ. विद्या चन्द ठाकुर जी को विनम्र श्रद्धाञ्जलि ।

प्राचार्य, संस्कृत महाविद्यालय, चकमोह
जिला. हमीरपुर (हि०प्र०)

शब्द ब्रह्म के साधक

डॉ. ओम प्रकाश शर्मा

मां भारती के सुपूत डॉ. विद्याचन्द ठाकुर शब्दब्रह्म के सच्चे साधक थे। इनका जन्म जिला कुल्लू की ग्राम पंचायत पीज के गांव 'खोड़ा आगे' में १३ जनवरी, १९५३ ई. को हुआ। इनके पिता का नाम श्री उच्छबू राम और माता का नाम श्रीमती लोतमी देवी था। डॉ. विद्याचन्द ठाकुर का बाल्यकाल माता-पिता के संस्कारी शब्दों के प्रभाव में व्यतीत हुआ। लोककथाओं के माध्यम से माता-पिता ने इनके मन-मस्तिष्क को शब्दब्रह्म की साधना के लिए उर्वर बनाया। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गांव में ही हुई। पहली कक्षा से स्नातक स्तरीय शिक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर उन्होंने अपनी कुशाग्रबुद्धि का परिचय दिया। अपने माता-पिता व गुरुजनों के वे प्रिय शिष्य थे। स्नातक की शिक्षा उतीर्ण करने के पश्चात् ठाकुर विद्याचन्द ने हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय से संस्कृत में स्नातकोतर कक्षा प्रथम श्रेणी में उतीर्ण की। इसी विश्वविद्यालय से उन्होंने कुल्लूवी के संस्कृत मूलक शब्द : एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर पीएच.डी की उपधि प्राप्त की।

सरकारी सेवा में पदार्पण

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर के अतुल ज्ञान के भण्डार को देखते हुए हिमाचल भाषा एवं संस्कृति विभाग में जिलाभाषा अधिकारी के रूप में उनका चयन हुआ। उन्होंने सन् १९७९ ई. को चम्बा जिला भाषा अधिकारी का पदभार संभाला। तत्पश्चात् वे मण्डी और हमीरपुर में भी जिला भाषा अधिकारी के रूप में कार्यरत रहे। विभिन्न जिलों में कार्यरत रहते हुए उन्होंने इन जिलों की लोक संस्कृति, लोक इतिहास और सभ्यता के विभिन्न पक्षों को गंभीरता से समझा। लोक पक्षों के परखी डॉ. विद्याचन्द ठाकुर एक श्रेष्ठ शब्द व्युत्पत्तिविद् भी थे। उनकी इसी प्रतिभा को देखते हुए उन्हें भाषा विभाग निदेशालय में 'शब्द भाषा व्युत्पत्तिविद् के पद पर पदोन्नति प्रदान की गई। अपनी प्रतिभा के बल पर वे आगे बढ़ते गए और उन्हें उपनिदेशक पद पर पदोन्नति मिली। डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी अर्हनिश समर्पित भाव से सेवाप्रदान करते रहे और उपनिदेशक के पद से सन् २०११ ई. को सेवानिवृत हुए। डॉ. विद्याचन्द ठाकुर दो बार भाषा, कला एवं संस्कृति अकादमी में सचिव पद पर भी कार्यरत रहे।

साहित्यिक यात्रा

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर की साहित्यिक यात्रा उनके जीवनदर्शन की महत्वपूर्ण कड़ी है। शब्दों की ऊर्जा को कलमबद्ध करना एक महान कला होती है। वस्तुतः इसके लिए सतत् साधना अपेक्षित होती है। इसी सतत साधना ने उन्हें एक श्रेष्ठ शब्दव्युत्पत्तिविद् बना डाला। विषय या शीर्षक में विद्यमान शब्दों के व्युत्पत्ति जन्य अर्थों को आधार मान कर लेखन को दिशा देना एक श्रेष्ठ लेखक की

पहचान होती है। भाषा एवं संस्कृति विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'हिमाचल प्रदेश के स्थान नाम' इसका प्रबल प्रमाण है, जिसके लेखक डॉ. विद्याचन्द ठाकुर है। यह पुस्तक शब्द व्युत्पत्तिविदों, शोधार्थियों एवं लेखकों के लिए आदर्श है। वस्तुतः शब्दों की व्युत्पत्ति के माध्यम से लेखक सहज ही अपना लेखन प्रारम्भ कर सकता है। इसीलिए यह पुस्तक विशेष महत्व रखती है। भाषा विभाग में रहते हुए डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी ने 'बाबा बालक नाथ धाम दियोटसिद्ध' और 'श्री नयना देवी शक्तिपीठ' मोनोग्राफ भी तैयार किए। देवमन्दिरों के इतिहास एवं मोनोग्राफ तैयार करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। धार्मिक स्थलों के इतिहास के मूल बिन्दुओं को समझने की अनुपम प्रतिभा इतिवृत्तों के लेखन में उजागर होती है। लोक के विभिन्न सांस्कृतिक पक्षों को ठाकुर विद्याचन्द जी ने केवल स्वयं जी कर देखा अपितु उनके मर्म को भी समझा। 'सुनयना के जनपद में' नामक पुस्तक में चम्बा जनपद की सांस्कृतिक विरासत को अपनी लेखनी में जिस शैली में उन्होंने उकेरा, वह अद्वितीय है। इसी प्रकार 'माण्डव्य प्रभा' मण्डी के लोक साहित्य एवं संस्कृति के पक्षों को उजागर करने वाली महत्वपूर्ण पुस्तक है। सम्पादक के रूप में उनकी दो पुस्तकें - वैवस्वत मन्वन्तर में मानव सृष्टि तथा हिमाचल प्रदेश की लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार पाठकों के लिए आकर्षण का केन्द्र रही है, ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर में वैचारिक पक्ष के निदेशक रहते हुए ये दो ग्रन्थ रत्न, उन्होंने समाज को समर्पित किए हैं। भाषा अकादमी में कार्यरत रहे हुए डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी ने बहुचर्चित पुस्तक 'हिमाचल प्रदेश में प्रचलित राम के लोक प्रसंग' नामक पुस्तक प्रकाशित की। पुस्तकों के अतिरिक्त डॉ. विद्याचन्द ठाकुर की साहित्यिक यात्रा शोधपत्रों, परिसंवादों, संगोष्ठियों और विभिन्न लेखों में देखते ही बनती है। कुल्लवी लोकोक्तियों में लोक चेतना, हिमाचल प्रदेश का सांस्कृतिक वैभव, कुल्लूवी देव परम्परा, लोक साहित्य में त्रिगर्त संदर्भ, लोकगीतों की धरती, भारतीय मनीषा की पहचान, मण्डी जनपद के लोकनाट्य, चम्बा नगर के मेले और त्यौहार, हिमाचल के स्थान नामों की शब्द व्युत्पत्ति, विषुव का त्यौहार बिशु-बसोआ, माण्डव्य ऋषि की तपोभूमि, जमलू का मलाणा जनपद, हिमाचल के जिलों के नामों की व्युत्पत्ति एवं गुलेरी निबन्ध साहित्य में प्रयुक्त सूक्तियां आदि ऐसे प्रकाशित लेख हैं, जो उन्हें शब्द ब्रह्म के साधक के रूप में स्थापित करते हैं। वस्तुतः ये लेख पाठकों को भावविभोर करने के साथ-साथ भारत की सनातनी संस्कृति के मर्म तक पहुंचाते हैं। प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर जिन विषयों को डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी ने विद्वानों के समक्ष रखा, वे भारतीय जीवन दर्शन और हिमाचल की सांस्कृतिक विरासत के पक्षों को उद्घृत करते हैं। साधारण शैली में गंभीर दर्शन के बिन्दुओं को समक्ष रखना ये कला तो डॉ. विद्या चन्द ठाकुर ही जानते थे।

लोक इतिहास एवं लोक संस्कृति के पक्षों पर डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी की कितनी गहरी दृष्टि थी, यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना प्रासंगिक हैं। 'हिमाचल प्रदेश के स्थान नाम' पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं – ''सृष्टि में कोई भी तत्व या वस्तु बिना नाम के नहीं होते हैं। इसलिए कहा जाता है कि नाम बिना होई न कोई। इसी वास्तविकता को प्रकट करती, हिमाचल में भी एक पहेली है - एक

खगा सब जो लगा। इसमें पूछा गया है कि वह कौन सा एक तत्व है जो सब के साथ जुड़ा होता है? इस पहेली का उतर है – 'नाम' जो कि सब के साथ जुड़ा होता है। किसी भी व्यक्ति, स्थान एवं वस्तु के लिए नाम का विधान इनकी पहचान के लिए अनिवार्य है। यदि नाम का विधान न होता तो सृष्टि में सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाता। नियमित व्यवस्था सुस्थापित न हो पाती।'

डॉ. विद्याचन्द का ध्येय वाक्य था – 'प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नर' अर्थात् वही व्यक्ति सर्वदर्शन और सर्वज्ञान सम्पन्न हो सकता है जो लोक का प्रत्यक्ष दर्शन करे। आजीवन विद्याचन्द जी ने लोक इतिहास और लोक संस्कृति की समाज में बिखरी मणियों को चुन-चुन कर अपनी लेखनी में पिरोया है। 'विशु-बसोआ' के व्युत्पत्ति लभ्यार्थ को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं - हिमाचल के विभिन्न स्थानों पर स्थान भेद से 'विशु-बसोआ' त्यौहार आयोजित होते हैं। ये विशु, बिरशु, बिशु तथा बसोआ आदि अनेक नामों से जाना जाता है। ये सभी नाम विषुव शब्द से व्युत्पन्न हुए है। शरद और बसन्त ऋतु के मध्य में जब सूर्य का तुला एवं मेष राशि में प्रवेश होता है, उस समय दिन और रात्रि समान हो जाते हैं। इस स्थितिकाल को 'विषुव' काल कहा जाता है। डॉ. विद्या चन्द का यह चिन्तन उन्हें लोक इतिहास और लोकसंस्कृति का अधिकारिक विद्वान उद्घोषित करता है।

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर विपाशा, सोमसी, शैलपुत्र, चन्द्रताल, भृगुतुंग आदि अनेकों शोध पत्रिकाओं से जुड़े रहे। हिमाचल की सांस्कृतिक विरासत को अपने लेखों के माध्यम से इन पत्रिकाओं में जिस प्रकार संरक्षित किया, वह अतुलनीय है। मण्डी में रहते हुए उन्होंने बन्द हो चुकी 'शैलपुत्र' पत्रिका को पुनः पाठकों तक पहुंचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कालगणना के वैज्ञानिक भारतीय सिद्धान्तों के भी वे अधिकारिक विद्वान थे।

लोक में ये सिद्धान्त किस प्रकार गहरे रचे-बसे हैं, उन्होंने सोमसी पत्रिका का 'नवसंवत्सर विशेषांक' निकाल कर इस आशय को पुष्ट किया। उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र पटियाला द्वारा प्रकाशित 'हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर' विषयक लेखमाला में चम्बा, मण्डी और कुल्लू के लोक नृत्यों पर शोधपरक लेख डॉ. विद्याचन्द जी की बहुमुखी प्रतिभा के परिचायक हैं।

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी की यात्रा

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी कलियुगाब्द ५१०४, विक्रमी संवत् २०५८, तदनुसार ७ अक्तूबर, २००२ को अस्तित्व में आया। यह शोध संस्थान भारत की सभ्यता, संस्कृति और इतिहास के सनातन और सत्यमूलक पक्षों की स्थापना हेतु अस्तित्व में आया था। डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी को इस शोध संस्थान में निदेशक वैचारिक पक्ष का दायित्व प्रदान किया गया। 'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्य पिहितं मुखं' अर्थात् सत्य का मुख हमेशा हिरयण्मय पात्र में ढका रहता है, इस ध्येय वाक्य को चरितार्थ करते हुए उन्होंने भारतीय सभ्यता, संस्कृति और इतिहास के वैचारिक पक्ष इस शोध संस्थान में स्थापित किए। फलस्वरूप इस शोध संस्थान से कई पुस्तकें प्रकाशित होने लगी। शोधार्थी इस शोध संस्थान की ओर आकर्षित हुए। परिसंवादों और संगोष्ठियों की कड़ी प्रारम्भ हुई।

इस शोध संस्थान की शोध परक गतिविधियां किस प्रकार लोगों तक पहुंचे, इस दृष्टि से शोध संस्थान ने 'इतिहास दिवाकर' नामक शोधपत्रिका प्रारम्भ की। इस पत्रिका के डॉ. विद्याचन्द ठाकुर सम्पादक थे। आज उनके वैचारिक पक्ष के बिन्दु जन-जन तक पहुंच रहे हैं।

सम्मान

ऋषितुल्य जीवन दर्शन किसी सम्मान का मोहताज़ नहीं होता। डॉ. विद्याचन्द ठाकुर की सतत साधना ने कई कला मंचों, साहित्यकारों कलाविदों और विद्वानों को आकर्षित किया। इस आकर्षण ने उन्हें कई सम्मानों के पात्र बनाया। उनकी बहुमुखी प्रतिभा को देखते हुए उन्हें बिकानेर साहित्य कला परिषद् का राती घाटी सम्मान, सिरमौर कला संगम बायरी सम्मान, हिमोत्कर्ष साहित्य सम्मान, साहित्य कला परिषद्, कुल्लू साहित्य सम्मान, भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए आथर्ज गिल्ड सम्मान आदि अनेकों सम्मान प्राप्त हुए। डॉ. विद्याचन्द ठाकुर विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं और कला परिषदों के भी सम्मानित सदस्य रहे हैं। वे देवप्रस्थ साहित्य एवं कला संगम कुल्लू के उपाध्यक्ष, जिला सांस्कृतिक परिषद् कुल्लू एवं भुट्टी कोऑपरेटिव संस्था कुल्लू की सम्मान चयन समिति के सदस्य रहे हैं। भारतीय इतिहास संकलन समिति कुल्लू ईकाई के गठन में भी इनकी अहम भूमिका रही है।

प्रयाण : मृदुभाषी, ऋषितुल्य जीवन दर्शन के धनी, सरलहृदय और सादा जीवन व्यतीत करने वाले डॉ. विद्याचन्द जी का महानिर्वाण ३१ अक्तूबर, २०१७, को कुल्लू में हुआ डॉ. विद्याचन्द जी शब्दब्रह्म के साधक के रूप में उनके द्वारा सृजित साहित्य में आज भी जीवन्त हैं।

सह आचार्य संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय कोटशेरा
चौड़ा मैदान, जिला शिमला (हि.प्र.)

यादें

श्रीनिवास जोशी

भगवान ने सृष्टि की रचना करने के बाद जीव से कहा कि तुम मेरे ही अंश हो। इसलिए तुम मेरे ही बराबर हो। जीव बोला, '' प्रभु सब कुछ तो आपके पास है, आप सर्वसमर्थ हो, हम कैसे बराबर हुए?'' तब भगवान बोले, '' देखो, इस संसार में जो कुछ भी है, वह नाम और रूप है। इन दोनों को परस्पर बांट कर हम बराबर हो जाते हैं। रूप को मैं अपने पास रखता हूं और नाम तुम्हें देता हूं। मेरा रूप नाम के अधीन रहेगा । यह रूप तभी सार्थक होगा जब तुम रूप का नाम लोगे।'' गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में नाम का वैज्ञानिक महत्व सरल, सुबोध शब्दों में ऐसे कहा हैः ''रूप ग्यान नहिं नाम विहीना'' ।

यह शब्द मेरे नहीं हैं बल्कि डा. विद्या चन्द ठाकुर के हैं जो आज न रूप हैं और न नाम। पर क्या ऐसे व्यक्ति का नाम मिटता है?नहीं, वह सदा जीवित रहता है।

मैं सन् १९८० में निदेशक, भाषा एवं संस्कृति के पद पर आसीन हुआ था, तब डा. विद्या चन्द ठाकुर मण्डी ज़िला के भाषा अधिकारी थे। ज़िलों का दौरा करने से पूर्व मैंने सभी ज़िला भाषा अधिकारियों से निवेदन किया कि वे परम्परानुसार मुझे मिलने के लिए सर्किट हाउस न आएं वरन् अपने अपने कार्यालय में ही रहें जहां मैं स्वयं उनसे तथा उनके सहयोगियों से मिलने आऊंगा।

मैं मण्डी ज़िला पहुंचा और वहां मैं विद्या चन्द के कार्यालय गया। संयोगवश, उन्हीं दिनों मेरी एक कहानी 'सारिका' पत्रिका में छपी थी। वह कहानी विद्या चन्द ने पढ़ ली थी और उन्होंने उसकी प्रशंसा की। मैंने उनके कथन को विशेष मान नहीं दिया क्योंकि मेरी समझ थी कि हर मातहत व्यक्ति अपने बॉस की तारीफ़ करता है चाहे उसने निरर्थक लिखा हो। मुझे बाद में पता चला कि विद्या चन्द ऐसे मातहत नहीं थे और उनकी आदत सच को सच कहने की थी। वह सच्चाई बड़ी बेबाकी से अपने अधिकारियों के सामने भी बयां कर देते थे। इसी सच्चाई के कारण उन्हें अपने सेवाकाल में कुछ भुगतना भी पड़ा। उनके प्रति मेरी धारणा बदली और जब भी कुछ सच जानना हो तो मैं उनकी विद्वता और जानकारी की सहायता लेता था।

दूसरी बात जो मैं उस वक्त समझ नहीं पाया था, वह था कि मण्डी में नियुक्त एक अधिकारी ने 'सारिका' जैसी पत्रिका किस प्रकार पढ़ ली । यह बात मुझे बाद में पता चली कि विद्या चन्द को पढ़ने के अतिरिक्त और शौक नहीं के बराबर थे। वह अक्सर बिस्तर में बैठ कर आनन्द से पढ़ते थे और बहुत सारी पत्रिकाओं को डाक से मंगवाते थे- 'सारिका' भी उनमें से एक थी। उनका बिस्तर उनका पुस्तकालय था जिसमें विभिन्न विषयों की पुस्तकें और पत्रिकाएं बिखरी पड़ी रहतीं थीं।

एक बार मैंने उन्हीं के सुझाव पर उन्हें **मुसद्दा रामायण** के संरक्षण हेतु चम्बा भेजा। यह

लोक-धरोहर धीरे धीरे विलुप्त हो रही है और इसके गाने वाले भी सीमित हो चुके हैं। अगला वंश इसे नकार रहा है। विद्या चन्द ने सारी गाए जाने वाली **मुसद्दा रामायण** को न केवल हस्तलिखित किया वरन उसकी रिकॉर्डिंग भी की। यह अमूल्य धरोहर वह विभाग को दे गए। मेरी विभाग से बदली होने के बाद जाने वह कहां गुम हो गई, इसका मुझे कोई ज्ञान नहीं है पर विद्या चन्द के इस अथक प्रयास की हर किसी ने तब सराहना की थी।

ऐसे कर्मठ अधिकारी आज बहुत कम रह गए हैं। अपने दायित्व को वह अपनी चिर परिचित मुस्कुराहट के साथ निभाते थे। शान्त स्वभाव वाले, मृदुभाषी डा. विद्या चन्द ठाकुर चुपचाप काम करने वाले कला,भाषा और संस्कृति अकादमी के सचिव भी रहे हैं। उन्होंने इस पद को दो बार सुशोभित किया; पहले, २००१ से २००३ तक और फिर आठ-नौ मास तक २००७ से २००८ तक। इन्होंने एक पुस्तक निकाली हिमाचल प्रदेश के स्थान नाम। वह एक पहाड़ी की पहेली बूझते हैं **'एक खगा सब जो लगा'?** एक ऐसा तत्व बताओ जो सबके साथ जुड़ा होता है – प्राणी के साथ भी और निष्प्राण के साथ भी। इस पहेली का उत्तर है – नाम जो सबके साथ जुड़ा है। कहते हैं न, **नाम बिना होई न कोई**। डाक्टर विद्याचन्द ठाकुर व्युतपत्तिविद थे तो नामों के बारे में ही बात करेंगे। उन्होंने अपने कार्यकाल में अकादमी की गतिविधियों को एक धार दी।

मैं समझता हूं कि उनकी अधिक मात्रा में मीठा खाने की आदत ने उनके जीवन को बहुत छोटा कर दिया। उन्हें डायबीटीज़ थी पर वह मीठे के स्वाद पर आवश्यक नियन्त्रण न रख सके और हमसे सदा के लिए विदा हो गए। **यदि कलयुग में सतयुगी पुरुष देखना हो तो विद्या चन्द को देखो**, कुछ कहना है तो कह दो, यह समझ कर नहीं कह दिया था किसी ने। परखा था, गुणा था और तभी बोला था।

पंचवटी,
भराड़ी, जिला शिमला (हि.प्र.)

अध्यात्म एवं विज्ञान के संगम

डॉ. भाग चन्द चौहान

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी का जीवन एक सादा, गंभीर और विद्वता से भरपूर था, यह हम सभी जानते हैं। मेरा पहली बार उनके साथ परिचय सन् १९९६ ई. में शिमला कालीबाड़ी के समीप मालरोड़ पर हुआ और वो भी अचानक ही परन्तु संयोजित ढंग से। मेरे मित्र श्री अनुराग पराशर, जो उनके अनन्य भक्त हैं, उनके बारे में मुझे बताते रहते थे और मेरे बारे में उन्हें। उन दिनों मैं हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में छात्र था और पत्रकारिता क्षेत्र में एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन करता था। हिमाचल प्रदेश प्रशासनिक सेवा और सरकारी नौकरियों में प्रवेश के लिए अन्य कई प्रकार की परीक्षाओं पर केन्द्रित यह पत्रिका (हिम कम्पीटीशन विजन) हिमाचल से अपने प्रकार की प्रथम पत्रिका थी और प्रदेश की गिनी-चुनी पत्रिकाओं में से एक थी। मुझे याद है जब मालरोड में हमारा यह मिलन श्री पराशर जी ने करवाया तो ठाकुर जी ने हमारे जज्बे की भूरी-भूरी सराहना की, उत्साह वर्धन किया तथा कुल्लू घाटी के मन्दिरों पर लिखी अपनी एक पुस्तक मुझे भेंट स्वरूप दी।

यह मात्र आधे घंटे का मिलन हुआ और बाद में अपनी-अपनी दिशा में हम चल दिए, कि लगभग १२ वर्ष बाद सन् २००७ में हमारी भेंट शोध संस्थान नेरी में जब हुई तो हम दोनों एक दूसरे को देख अचम्भित भी हुए और खुश भी। हैरानी इस बात की थी कि दोनों एक राह पर कैसे और खुशी तो भला होनी ही थी। शिमला मिलन के जितने संस्मरण मेरे पास थे, उतने सब उनके पास भी। विस्तार से पत्रिका की सफलता और बन्द होने के बारे चर्चा हुई तथा कई अन्य संस्मरण भी। नेरी शोध संस्थान में जुड़ने के बाद मैंने २०१० में जब राजकीय महाविद्यालय करसोग में क्षेत्र के प्राचीन मंदिरों के इतिहास लेखन पर एक दो दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया था तो मा. चेतराम गर्ग जी के साथ डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी भी इस संगोष्ठी में पधारे। इस संगोष्ठी में प्रान्त भर के इतिहास के शोधकर्ताओं और विद्वानों के अतिरिक्त मंदिरों के गुर, पुजारी और वरिष्ठ कारदारों ने भी भाग लिया था जो कि अपने आप में अनूठा संगम था। ठाकुर जी को यह प्रयोग बहुत ही पसन्द आया और वे इस संगोष्ठी में इतने प्रसन्न थे कि अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने इसका और सम्पूर्ण व्यवस्था का बार-बार उल्लेख किया और हमारी पूरी टोली की भरपूर प्रशन्सा की।

शोध संस्थान के उत्थान और भविष्य कार्य शैली पर हमारी अनेकों बार चर्चा चलती रहती थी और जब संभव हो तो हम दूरभाष से संपर्क में भी रहते थे। इस तरह डॉ. ठाकुर जी मुझे त्योहारों के दौरान कुल्लू आने का बार-बार निमन्त्रण देते रहते और मैं भी उनसे बचन करता रहता। विशेषकर जब वे मनु महाराज के विषय पर मैंने शोध शुरू किया है तब से तो मैं कुल्लू प्रवास के लिए गंभीर हो

गया हूं। अतः मैं कुछ महीनों से मा. चेतराम जी से कुल्लू के प्रवास कार्यक्रम बनाने का बार-बार आग्रह भी कर रहा था, लेकिन होनी को कौन टाल सकता। हमारा कुल्लू उनके घर जाना भी हुआ तो उनके देहान्त के बाद। मैं यही पीड़ा मा. चेतराम जी और डॉ. विकास जी से उस यात्रा के दौरान भी सांझा करता रहा। ये जीवन भी क्या है? आज है तो कल होगा, कोई नहीं जानता।

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी एक देवता स्वरूप व्यक्ति थे। साक्षात् कुल्लू और हिमालय उनमें बसता था। इतिहास, भाषा और संस्कृति की गहरी पकड़ के साथ-साथ वे अध्यात्म और विज्ञान का अध्ययन करते रहते थे और एक अच्छी समझ रखते थे। व्यक्तिगत तौर पर उनके अचानक देहावसान पर मुझे घोर पीड़ा हुई है, संस्थान का विचार करता हूं तो उनके बिना एक भारी खालीपन महसूस होता है।

ठाकुर जी हम सबके लिए प्रेरणा स्त्रोत रहे और आगे भी रहेंगे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन गांव, समाज और देश हित में लगाया। नेरी शोध संस्थान के लिए तो वो एक नींव का पत्थर थे। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि उनके द्वारा स्थापित किए गए मूल्यों की हम रक्षा कर सकें। मैं यह मानता हूं कि भारतीय इतिहास लेखन कार्य में यदि हम उनके सपनों को साकार कर पायें तो वहीं उनके लिए एक सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

डीन विज्ञान संकाय
केन्द्रीय विश्वविद्यालय शाहपुर
जिला कांगड़ा (हि.प्र.)

व्यक्ति से व्यक्तित्व का सफर

रमेश जसरोटिया

३१ अक्तूबर, २०१७ को भूरिसिंह संग्रहालय चम्बा में कार्यरत हमारी एक सहयोगी श्रीमती प्रेम लता मेहरा की सेवानिवृति थी। इस उपलक्ष्य में उन्होंने एक सहभोज रखा था। जिसमें मैं भी आमन्त्रित था। दोपहर एक बजे मैं आयोजन स्थल पर श्रीमती प्रेमलता को सुखद भविष्य की कामना हेतु पहुंचा तो कुछ विचलित होने के कारण यह सुनिश्चित था कि भोजन ग्रहण नहीं करूंगा। कुछ लोग वहां विराजमान हो गए थे परन्तु प्रेम लता कार्यालय में की जाने वाली औपचारिकताओं को एवं रस्मों को निभाते हुए सहभोज स्थल पर नहीं पहुंच पाई थी। मैं एक स्थान पर बैठा ही था कि मेरी एक अन्य सहयोगी श्रीमती नीरू शर्मा मेरे साथ खाली पड़ी कुर्सी पर आकर बैठी और धीमे से बोली – आपने कुछ सुना? मैंने जिज्ञासा वश उसे देखा। उसने फिर कहा – डॉ. विद्याचन्द! और वह चुप हो गई। मैंने पूछा क्या? पक्का नहीं कह सकती पर सुना है डॉ. विद्याचन्द नहीं रहे। मेरे लिए यह सूचना एक आघात से कम नहीं थी। एक दम भौंचक्का सा रह गया था। अभी कुछ दिन पहले हम दोनों नेरी में इकटठे ही थे। डॉ. विद्याचन्द इतिहास दिवाकर की सामग्री सम्पादित कर रहे थे और शोध संस्थान में नियमित रूप से चलने वाली गोष्ठियों में से एक आयोजक भी थे। मैं भी उसी संगोष्ठी में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने के अन्तर्गत चम्बा से नेरी पहुंचा था।

इतने में नीरू के पति श्री विजय शर्मा पद्मश्री हमारे पास आकर खड़े हुए तो मैंने उनसे पूछा - क्या डॉ. विद्या चन्द वाली खबर पक्की है – हां। विजय शर्मा ने कहा। सोशल मीडिया में आ रहा है। उनकी तबीयत अचानक खराब हुई, कुल्लू से उन्हें पी.जी.आई रैफर किया, रास्ते में शायद पञ्चकूला के आसपास उनका स्वर्गवास हो गया। हतप्रभ सा मैं समझ नहीं पा रहा था कि क्या करूं। मैं चेतराम जी से सम्पर्क साधने का प्रयास करता रहा। मुझे बार-बार 'नॉट रीचेबल' सुनने को मिला। फिर मैंने डॉ. विद्याचन्द के मोबाइल नम्बर पर कई बार सम्पर्क साधा। घण्टी बजती पर उठाया किसी ने नहीं। कोई हफ्ते बाद मेरा चेतराम गर्ग से मोबाइल सम्पर्क हुआ तो मैंने खूब रोष व्यक्त किया और चेतराम जी अपने चिरपरिचित अन्दाज में उस वाक्यात के व्रिाय में बताते रहे। खैर मैंने जब बाद में चिन्तन किया तो इस परिणाम में पहुंचा कि यदि मुझे समय पर पता चल जाता तो भी मैं दाह-संस्कार में सम्मिलित नहीं हो पाता क्योंकि चम्बा से उनके गांव खोड़ा आगे कुल्लू की दूरी तीन सौ कि.मी. से अधिक ही है और वाहन द्वारा पहुंचने में भी पूरा दिन तो लग ही जाता है।

चम्बा में जिला भाषा अधिकारी कार्यालय की स्थापना नवम्बर १९८० में हुई थी और

डॉ. विद्याचन्द वहां के पहले भाषा अधिकारी थे। उन दिनों मैं गिरिराज साप्ताहिक शिमला में एडहॉक उप-सम्पादक था। छुटियां मिलती नहीं थी कभी-कभार चम्बा आना होता तो डॉ. विद्या चन्द से भी मुलाकात हो जाती। वर्ष १९८२ में जिला भाषा अधिकारी कार्यालय मुहल्ला सुराड़ा स्थित हरिभवन में आ गया। इसी मुहल्ले में मेरा पैतृक मकान है और मैं गिरिराज की नौकरी छोड़ कला संस्कृति भाषा अकादमी में आ गया था। चूंकि मेरे घर को जाने वाला रास्ता हरिभवन से होकर गुजरता है, अतः जब भी चम्बा आता कुछ देर विद्याचन्द जी से मिलना हो ही जाता। सादगी का जीवन जीने वाला व्यक्ति जिनके कपड़े भी व्यवस्थित ढंग से नहीं होते वह जिला भाषा अधिकारी जैसे उच्च पद वह कैसे विराजमान हो गया? मैं कई बार सोचता रहा। यदि लोक सेवा आयोग के माध्यम से सरकारी सेवा में न आए होते तो मुझे यह विश्वास रहता कि अवश्य ही इस व्यक्ति का करीबी रिश्तेदार कोई प्रभावशाली राजनेता है। पर जैसे-जैसे मैं उनके सानिध्य में आया तो उनकी सादगी में छिपी विद्वता और उससे भी बढ़कर उनके मानवीय दृष्टिकोण को मैं समझ पाया, वह भी कुछ हद तक।

वैसे तो गाहे-बगाहे डॉ. विद्याचन्द से मुलाकात होती रहती थी। जब वह मण्डी में भाषा अधिकारी थे तो दशकों बाद आयोजित होने वाले **हारगी उत्सव** (खोखण के आदि ब्रह्म का यात्रोत्सव) का प्रलेखन के अन्तर्गत फिल्मांकन तथा उस पर शोधकार्य, इन्हीं के आग्रह पर हम दोनों द्वारा संयुक्त रूप से किया गया था। अकादमी की ओर से प्रदेश के उत्सव-त्यौहारों के फिल्मांकन का यह प्रथम कार्य था। इसके पश्चात् **दरयोइण** (कुल्लू) तथा **कमांद** के काहिका उत्सवों का प्रलेखन एवं फिल्मांकन भी हम दोनों ने मिलकर किया था। इन कार्यों के दौरान समय-समय दिए गए उनके सुझावों तथा आपसी विचार-विमर्श का ही शायद परिणाम था कि आगे चलकर मुझे प्रलेखन का विशेषज्ञ समाझा जाने लगा।

परन्तु जब वह वर्ष २००१ से २००३ तक अकादमी के सचिव बन कर आए तो हमारा सहयोगीपन मित्रता में आ गया। मुझे उसके बारे में और अधिक जानने के अवसर प्राप्त हुए। स्वर्गीय ठाकुर रामसिंह से परिचय बड़े चेतराम जी का स्नेह, नेरी शोध संस्थान से भावात्मक जुड़ाव और न जाने कितने ही गौरवमयी अवसर डॉ. विद्याचन्द के कारण मुझे प्राप्त हुए। संघ शाखा से मेरा प्रवेश १९६४ में हुआ जब मेरे दो मित्र और सहपाठी रामपाल तथा कमल महाजन मुझे जबरदस्ती चम्बा चौगान में सायंकालीन लगने वाली बाल शाखा में ले गए। नियमित तो नहीं पर सप्ताह में तीन-चार दिन शाखा में उपस्थित होता। उन दिनों चम्बा में संघ और जनसंघ को लालाओं की पार्टी माना जाता था। मेरे घर बाले ठहरे कट्टर कांग्रेस समर्थक। प्रेरणा का अभाव और घर से शाखा स्थान की दूरी, मेरे शाखा जाने के नियमितिकरण में रोड़ा साबित होते थे। यह सिलसिला ज्यादा दिनों तक नहीं चला। इसके बाद साठ के दशक में कॉलेज प्रवेश के दौरान अ.भा. वि.प. से जुड़ने का अवसर मिला पर संघ से दूरी ही रही। वर्ष २००१ में एक यात्रा के दौरान बड़े चेतराम जी, डॉ. विद्याचन्द और मैं किसी विषय पर बातचीत कर रहे थे। हमारी यह बातचीत बहस में बदल गई। मुद्दा राजनैतिक हो गया।

अपने-अपने विश्लेषण और अपने-अपने आंकड़े। चेतराम जी और विद्याचन्द के एक विचार और मेरे अलग तथ्य। परिणाम तक पहुंचे बगैर ही यात्रा समाप्त। बाद में डॉ. विद्याचन्द ने अकेले में कहा – आपको इस प्रकार बहस नहीं करनी चाहिए थी। मैंने हंसते हुए कहा – किस प्रकार। बिना तथ्यों के? तब तक बड़े चेतराम जी के विषय में मुझे कुछ भी जानकारी नहीं थी। डॉ. विद्याचन्द ने कहा - मियां जी! बड़े यदि गलत भी बोल रहे हों तो भी हमें उनका सम्मान करते हुए चुप रहना चाहिए। हिमाचल में संघ को इस स्थान पर पहुंचाने में चेतराम जी का बहुत बड़ा योगदान है। खैर मुझे यहां मानते हुए जरा भी हिचकिचाहट नहीं कि बाद में मेरे तथ्य गलत और उनके विचार सही साबित हुए। कुछ दिनों बाद डॉ. विद्याचन्द ने मुझे अपने कक्ष में बुलाकर कहा – आपने क्या जादू किया कि चेतराम जी मुझे कई बार कह चुके कि इस लड़के को संघ से जोड़ो। यह डॉ. विद्याचन्द की चिरपरिचित शैली थी। मुझे पता था कि चेतराम जी ने ऐसा शायद ही कहा हो परन्तु डॉ. विद्याचन्द मुझे संघ कार्यों से जोड़ना चाहते थे। अतः चेतराम जी के नाम को माध्यम बनाकर मेरी तारीफ कर रहे हैं। डॉ. विद्याचन्द में यह विशेषता रही कि किसी भी सफल कार्य का श्रेय स्वयं कभी नहीं लिया। उन्हीं की प्रेरणा से मैं पुनः संघ की चक्कर शाखा में जाने लगा जहां मोतीलाल शर्मा और कई अन्य कर्मठ स्वयंसेवकों के साथ समाज से जुड़े कई कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कई शिविरों में जाकर राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व का बोध हुआ। एक बार मैंने विद्याचन्द जी से कहा कि आखिरकार संघ में मेरा पुनप्रवेश करवा ही दिया तो उन्होंने बड़ी गंभीरता से कहा कि यह आपका पुनप्रवेश नहीं है, आप लम्बे समय निष्क्रिय थे, अब क्रियाशील हुए।

उनकी सादगी और ईमानदारी की तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती। कोई भी सरकारी नौकरशाह मैंने उन जैसा नहीं देखा। एक बार शेरसिंह जी भारतीय इतिहास संकलन योजना की हिमाचल ईकाई को अधिक क्रियाशील बनाने के दृष्टिगत न्यू शिमला स्थित डॉ. विद्याचन्द के आवास पर गए। मैं और पंडित वासुदेव जी उनके साथ थे। उनके कक्ष में प्रवेश करते ही अस्त-व्यस्त कपड़ों अन्य सामग्री तथा यहां वहां बिखरी धर्म-संस्कृति इतिहास व साहित्य की पुस्तकों से सामना हुआ। मुझे काफी अटपटा लगा। कुछ देर बातचीत के बाद डॉ. विद्याचन्द ने मूंगफली का लिफाफा शेर सिंह जी के सम्मुख रखकर उसके सेवन का आग्रह किया। शेर सिंह ने भी एक-दो मूंगफली उठाई और अपनी बात कहने लगे। डॉ. विद्याचन्द ने विनम्रता से कहा – मैं आपको पहले भी कह चुका हूं। यह ठाकुर रामसिंह जी का स्पष्ट आदेश है कि नेरी शोध संस्थान का कार्य देखूं अतः इतिहास संकलन योजना का कार्य देखना कैसे हो पाएगा। हां जितना संभव हो पाएगा सहयोग दूंगा परन्तु पदभार के लिए क्षमा करे। शेर सिंह जी ने बहुत जोर डाला कि इतिहास संकलन योजना के लिए कार्य करें परन्तु डॉ. विद्याचन्द अपनी बात दोहराते रहे। अंत में उन्होंने कहा– यदि ठाकुर साहब नेरी के कार्य से मुक्त करते है तो इतिहास संकलन योजना से जुड़ने में कोई आपति नहीं। आप ठाकुर साहब से बात कर लें।

अगले दिन मैंने मूंगफली वाली बात का जिक्र किया और कहा कि आप इशारा कर देते हम

साथ की दुकान से मिठाई नमकीन ले आते। ठाकुर साहब ने साफगोई से कहा – दिखावा क्यों। जो मेरे पास उपलब्ध था दे दिया। जब मैंने बिखरी पुस्तकों का कारण जानना चाहा तो हंसते हुए बोले – **असली कार्य पुस्तकों को सजाना नहीं, उन्हें पढ़ना और उनसे संदर्भ लेना है। पुस्तकें बिखरी रहनी चाहिए ताकि आते-जाते सदैव आपकी नजरें पड़ती रहें, पता नहीं कब किस संदर्भ की आवश्यकता पड़े या किस विषय में याद आ जाए।**

जब वह पहली बार सचिव बने तो सभी सदस्यों को बारी-बारी उन्होंने अपने कक्ष में बुलाकर अकादमी के कार्यों को अधिक गति प्रदान किए जाने के बारे में बातचीत की और सुझाव मांगे। एक दिन मुझे बुलाकर कहा पत्रिकाएं काफी विलम्ब से छप रही हैं, कैसे समयबद्ध हो पाएंगी? मैंने कहा- यह आप व्यवहतों से पूछें मैं तो पत्रिकाएं नहीं देख रहा हूं। उन्होंने कहा - आप तो अपने आदमी हैं..। मैंने कहा – मैं सिर्फ दफ्तर का आदमी हूं, आपका या किसी और का नहीं। मेरा अंदाज कुछ ऐसा था कि अच्छे भले को भी गुस्सा आ जाए परन्तु डॉ. विद्याचन्द ने बड़ी ही विनम्रता से कहा – ये (पत्रिकाएं) भी दफ्तर की हैं मैं और आप भी। दोनों मिलकर काम करेंगे तो इनका बैकलॉग खत्म ही कर लेंगे। इस घटना से आप बॉस और अधीनस्थ के रूप में लें। कोई दूसरा होता तो कुछ और ही हो जाता परन्तु यह डॉ. विद्याचन्द ही थे जिन्होंने किसी भी परिस्थिति में आपा खोया नहीं और न ही अपनी अफसरी का रॉब झाड़ा। एकदम शान्त, शालीन और सौम्यता की प्रतिमूर्ति।

अपने पद का दुरुपयोग की बात तो दूर कभी उन्होंने सरकार द्वारा प्रदान सुविधाओं का उपयोग नहीं किया। हम अक्सर कहते – कार्यालय से आवास तक आने जाने हेतु वाहन तो ले जाया करें तो उनका जबाब होता मैंने मॉल होकर जाना होता है। मुंशीराम (चालक) का भी तो घर परिवार है, कब तक इन्तजार करता रहेगा। मॉल से उनका तात्पर्य शिमला से होता था। मॉल पर कभी-कभार सरकारी कार्यक्रम या भूले-भटके ही जाते थे। सचिवालय जाना लगा ही रहता था। कई बार मैं भी साथ होता पैदल सचिवालय तक। खीज तो बहुत आती और सामान्यतः मैं गाड़ी में चलने की बात कह ही देता तो हंसकर कहते – सरकारी सुविधा का क्या। आज है कल नहीं। उचित है पैदल चलने की आदत डालें रखें।

आम तौर पर वह महीने में दो-तीन बार अपने घर कुल्लू जाते रहते। औरों की तरह वह भी चाहते तो सरकारी दौरा भरकर दफ्तर की गाड़ी कुल्लू तक ले जा सकते पर कुल्लू की बात तो छोड़िए उन्होंने घर जाते समय बस अड्डे तक सरकारी वाहन का उपयोग नहीं किया। वर्ष २००७ अथवा २००८ ठीक से याद नहीं नेरी में कोई वार्षिक उत्सव था। मुझे बुलाया और कहा नेरी चलना है पर आपकी गाड़ी में चलेंगे। बाकायदा हम दोनों ने छुट्टियां ली नेरी में आयोजित कार्यक्रम में भाग लिया और तीसरे दिन वापिस शिमला पहुंचे। अकादमी के कार्यक्रमों का आयोजन जब भी शिमला के बजाए अन्य स्थानों पर होता न तो वह लेखकों कलाकारों को दी जाने वाली भोजन सुविधा का लाभ लेते न ही आवास का। खाने ठहरने का खर्च अपनी जेब से उठाते। उनसे जुड़ी कई स्मृतियां मेरे मस्तिष्क में

चलायमान हैं। उन्हें लेखनीबद्ध करूं तो शायद पुस्तक बन जाए।

अपनी सेवा निवृति से कोई दो वर्ष पूर्व एक दिन उन्होंने कहा – मुझे नौकरी छोड़नी पड़ेगी। मैंने पूछा - क्यों? ठाकुर साहब कहते हैं कि नेरी में पूर्णकालिक के रूप में कार्य करूं। मैंने कहा - मुझे भी सेवानिवृत होने दीजिए। इकट्ठे रहकर कार्य करेंगे। उन्होंने कहा देर हो जाएगी। बाद में पता नहीं क्या हुआ, नौकरी छोड़ने का इरादा त्याग कर सामान्य रूप से सरकारी कार्य करने लगे। नेरी संस्थान का कार्य भी चलता रहा।

परिक्रमा, पृथ्वी निवास
मुहल्ला, अप्पर सुराड़ा
जिला चम्बा - १७६३१० (हि.प्र.)

दूरदर्शी व्यक्तित्व

अश्वनी कुमार शर्मा

संस्थान से मेरा जुड़ाव प. पू. ठाकुर रामसिंह द्वारा हुआ और मुझमें निरन्तरता और सक्रियता का संचार हो गया। माननीय ठाकुर विद्याचन्द जी से बैठकों तथा संस्थान के कार्यों में मिलना-जुलना रहता था। उन्होंने मुझे हमेशा सहयोगी के रूप में देखा व प्रोत्साहित किया। नवम्बर २००६ में सुजानपुर में कटोच वंश पर राष्ट्रीय परिसंवाद हुआ। वहां पर **विश्व गुरु भारत-विज्ञान प्रदर्शनी** को लगाने का कार्य स्वतन्त्र रूप से मुझे सौंपा गया। मेरे लिए यह एक चुनौती पूर्ण कार्य था। यह प्रदर्शनी तीन दिन तक चली व इसकी खूब प्रशंसा हुई। इस कार्य के उपरान्त मेरी निकटता ठाकुर विद्याचन्द जी से बढ़ती चली गई।

हम अक्सर सम्पर्क में रहते थे। ठाकुर जी हमेशा संस्थान में चल रहे कार्यों पर चर्चा करते थे। संस्थान में वरिष्ठ लोगों व नई टोली के बीच सम्पर्क व समन्वय पर लम्बी चर्चा होती थी। ठाकुर जी हमेशा नई टोली के गठन व उन्हें संस्थान की रुचि अनुसार सक्रियता से आगे बढ़ाने पर बल देते थे।

ठाकुर जी एक दूरदर्शी, कार्यनिष्ठ व जुझारू व्यक्ति थे। पिछले दो वर्षों में ठाकुर जी हमेशा, उनके द्वारा संभाले कार्यों को नई टोली को संभालने पर बल देते रहे। ठाकुर जी जब भी कुल्लू से लेखन के कार्य के लिए आते तो अपना सारा समय संस्थान में रह कर कार्यों को समर्पित रहते थे। जब भी मैं उनसे मिलने जाता तो बहुत कम समय के लिए मिलते। उनका सारा ध्यान काम पर ही रहता। जब ठाकुर जी ने अपना कार्य नई टोली को सौंपा तो मुझे अटपटा लगा। पूर्व विदित विषय को ठाकुर जी भांप गए थे।

ठाकुर जी शारीरिक रूप से हमारे साथ नहीं हैं, परन्तु उनके द्वारा प्रदत 'दूरदर्शिता व कार्यनिष्ठा' हमारा मार्गदर्शन करती रहेगी।

अश्वा आर्ट्स,
सलासी, जिला हमीरपुर (हि.प्र.)

ठाकुर विद्याचन्द जी के अन्तिम शब्द

डॉ. कर्म सिंह

ठाकुर विद्याचंद जी ने १.८.२००१ से ३१.५.२००३ तथा ६.१०.२००७ से ४.७.२००८ तक हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी में सचिव के पद पर सेवाएं दीं। इस अवधि में उन्होंने हिमाचल प्रदेश में लोक रामायण के प्रसंग, मणिमहेश (उमा प्रसाद मुखर्जी विरचित यात्रा संस्मरण), नव संवत्सर परंपरा आदि पुस्तकें संपादित व प्रकाशित करके लोक साहित्य के सरंक्षण की दिशा में सार्थक पहल की। इसी दौरान कुल्लू में भारतीय कालगणना पर आधारित राष्ट्रीय परिसंवाद का सफल आयोजन हुआ। इस कार्यक्रम में ठाकुर राम सिंह जी का भी मार्गदर्शन तथा सान्निध्य प्राप्त हुआ। वास्तव में ये कार्यक्रम भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन तथा लोक संस्कृति एवं साहित्य के संग्रहण, प्रलेखन तथा प्रकाशन के क्षेत्र में आज भी मार्गदर्शक एवं प्रेरणा स्रोत बने हुए हैं।

यह सर्वविदित ही है कि वास्तव में ठाकुर विद्याचंद जी बहुत कम बोलते थे। सोच समझकर बोलते थे। उनके मुख से निकले हर एक शब्द का अपना एक महत्त्व होता था।

ठाकुर विद्याचंद जी की मुझ से यह अपेक्षा रही कि वैदिक साहित्य, धर्म, दर्शन और आर्य समाज के मंतव्यों से संबंधित विषय पर शोध पूर्ण कार्य हो और इस दिशा में कुछ सफल प्रयास हुए भी। परिणामतः मेरी पुस्तकें वैदिक उपासना, योग विज्ञान, भारतीय दर्शन में समन्वय आदि प्रकाशित भी हुई।

उनकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि हिमाचल प्रदेश के लोक साहित्य के संरक्षण तथा प्रकाशन की दिशा में कुछ ठोस कार्य किए जाने चाहिए। इस दिशा में प्रयास जारी हैं। लगभग एक वर्ष पूर्व ठाकुर विद्याचंद जी शिमला आए तो डॉ. ओम प्रकाश शर्मा जी और मेरी उनके साथ लम्बी चर्चा हुई। उनका इस बात पर जोर था कि वर्तमान में जो विद्वान् अपनी पूरी आयु के अध्ययन तथा अनुभव से विभिन्न विषयों में महारत हासिल रखते हैं, उनके व्याख्यान, साक्षात्कार तथा परिसंवाद आयोजित होने चाहिए तथा उनके वक्तव्यों, उपदेशों की वीडियो रिकार्डिंग भी होनी चाहिए और उनके आलेखों को कलमबद्ध करके संग्रह भी किया जाना चाहिए। इधर, इन विषयों पर उनकी चर्चाएं श्री चेतराम गर्ग जी के साथ निरंतर होती रहती थीं।

गत वर्ष श्री चेतराम जी की ओर से मुझे डॉ. विद्याचंद ठाकुर जी से मिलने का निर्देश मिला कि ठाकुर जी मुझसे कुछ बात करना चाहते हैं परंतु कुछ व्यक्तिगत तथा पारिवारिक कारणों से मैं चाहते हुए भी ठाकुर विद्याचंद जी से जल्दी मिल न सका।

डॉ. विद्याचंद ठाकुर जी के देहावसान से तीन दिन पूर्व कुल्लू के एक निजी अस्पताल में उनसे

मिलना हुआ। इस समय वे आराम कर रहे थे। मुझे देखकर थोड़ा सा सुस्ताए और उठकर बिस्तर पर बैठ गए। अभिवादन और प्रारंभिक बातचीत के बाद मैंने ठाकुर जी से इस बात के लिए क्षमायाचना की कि श्री चेतराम जी के निर्देश के बाद भी मुझे आपसे मिलने में काफी विलंब हुआ। कहिए, क्या आदेश है ठाकुर जी ! मैंने विनम्रता से कहा। ठाकुर विद्याचंद जी ने कहा – मैं बहुत समय से आपसे कुछ कहना चाहता था, और वह यह कि आप शोध संस्थान नेरी तथा संगठन के साथ जुडे रहें और पूर्ण निष्ठा तथा समर्पण भाव से कार्य करें। आप अकादमी के माध्यम से भी अच्छा कार्य कर रहे हैं। अच्छे काम में सबका सहयोग लेकर आगे बढते रहें।

ये शब्द कहकर ठाकुर जी कुछ देर तक खामोश होकर मुझे देखते रहे कि शायद उन्होंने अपने मन की बात मुझ से कह दी है और उनके मन का बोझ कुछ कम हुआ है तथा अब मुझे उनके अंतिम शब्दों को सत्य साबित करने के लिए स्वयं प्रयास करना है।

ठाकुर विद्याचंद जी का स्मरण होते ही उनके ये अंतिम शब्द कानों में झनझनाहट पैदा करते हैं और मुझे अपने ऊपर ग्लानि होने लगती है कि मैने उनकी बात सुनने तथा उनसे मिलने में कुछ देर कर दी।

इसके बाद कुछ इधर-उधर की बातें करके मैं अपने साथी श्री देवराज शर्मा जी के साथ कला केन्द्र वापिस आ गया। कुल्लू में दो दिन के कार्यक्रम के बाद शिमला पहुंचते ही यह दुःखद सूचना मिली कि ठाकुर विद्याचंद जी नहीं रहे।

डॉ. ओम प्रकाश शर्मा और श्री चुनी लाल कश्यप हम सब ठाकुर जी के अंतिम दर्शन के लिए कुल्लू पहुंचे और उन्हें अंतिम विदाई दी। भले ही डॉ. विद्याचंद ठाकुर जी का पार्थिव शरीर आज हमारे मध्य नहीं है परंतु उनकी विनम्रता, विद्वता, कर्मठता, सहज स्वभाव, कर्तव्यपरायणता और निःस्वार्थ सेवा भावना आज भी हमारा पथ प्रदर्शन करती है आज भी गूंजते हैं उनके अंतिम शब्द।

सचिव,
भाषा-कला संस्कृति विभाग
शिमला - हि.प्र.

एक शुद्ध चेतन व्यक्तित्व

प्यार चन्द परमार

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर एक कर्मठ, ध्येयनिष्ठ, मृदुभाषी तथा सरल हृदय शिक्षाविद् थे। वे शोध संस्थान में **इतिहास दिवाकर** शोध पत्रिका के सम्पादक होने के नाते, पत्रिका में प्रकाशित होने वाले लेखों के सम्पादन हेतु प्रायः आते थे। कर्मठता इतनी कि ८-१० दिनों में वह सम्पादन कार्य में अति व्यस्त रहते। इन दिनों वे पुस्तकालय कक्ष में ही मिलते थे। पत्रिका में प्रकाशित होने वाले लेखों के टंकणोपरान्त शुद्धिकरण के कार्य मैं भी उनका सहयोग करता था। अतः ठाकुर जी मुझे अत्याधिक प्रोत्साहित करते और कहते कि आप इन लेखों को बड़ी गहराई से पढ़ते हैं तथा जो गलती कभी मुझसे भी छूट जाती है, आप उसे बड़ी निपुणता से पकड़ लेते हैं। उनके जीवन में सादगी इतनी थी कि जो उन्हें प्रथम बार देखता उसे उनकी विद्वता का तब तक एहसास न होता जब तक वह उनसे वार्ता न करता या कोई अन्य कार्यकर्ता उनका परिचय न करवाता। बात पिछली गर्मियों के दिनों की है वे लेखन सम्बन्धी किसी कार्य से संस्थान में १०-१२ दिनों तक रहे। उन दिनों संस्थान के मार्गदर्शक श्री चेतराम गर्ग किसी कार्य से बाहर गए थे। संस्थान में रसोइया भी न था। चेतराम जी ने मुझे फोन पर बताया कि आप ठाकुर विद्याचन्द जी को सायं का भोजन अपने घर से ले जाकर करवा आया करें। तो मैं जब उन्हें भोजन करवाने जाता तो वह हमेशा एक बात बार-बार करते कि मैं आपको बहुत कष्ट दे रहा हूं। डॉ. विद्याचन्द जी को जब मैंने किसी कार्यकर्ता से बात करते देखा, हमेशा हंसकर ही कहते। चाहे विषय कितना भी गंभीर हों। एक नैसर्गिक हंसी उनके चेहरे का स्वभाव ही बन गया था।

एक दिन उन्होंने अपनी मृदुवाणी से मुझे कहा कि आप अपने गांव नेरी का इतिहास लिखो। समय सीमा वद्ध नहीं, जब आपको फुर्सत मिले तब लेकिन लिखना अवश्य। मैंने उन्हें संतुष्ट करते हुए कहा था कि ठाकुर जी अवश्य लिखूंगा। मुझे खेद है कि मैं उनके रहते वो कार्य पूर्ण न कर सका हूं। उनके अन्तिम दिनों में, जब वो नेरी संस्थान से एक कार्यक्रम के उपरान्त शीघ्र ही अस्पताल में इलाज हेतु दाखिल हो गए थे, मेरी दो-तीन बार उनसे दूरभाष पर बात होती रही थी। हाल चाल पूछने पर वो बता रहे थे कि 'परमार जी पित्ते की पत्थरी का आप्रेशन होना है लेकिन शूगर अचानक बढ़ गया है और बस उसे ही नियन्त्रित करने में लगे हैं डाक्टर। लेकिन अचानक शायद प्रथम नवम्बर को मुझे डॉ. विकास शर्मा जी से मालूम हुआ कि डॉ. विद्या चन्द जी का पिछले कल पी.जी.आई चण्डीगढ़ जाते-जाते देहावसान हो गया है। कुछ देर तक तो विश्वास ही नहीं हो रहा था। लेकिन होनी तो घट चुकी थी उसे कौन टाल सकता है।

व्यवस्थापक, इतिहास दिवाकर
शोध संस्थान नेरी

संस्कृत और संस्कृति के पुजारी

डॉ. सीता राम ठाकुर

भाषा कला संस्कृति – ऐसे विषय हैं जिसके उल्लास के प्रवाह से सभी आप्लावित होते हैं लेकिन इनकी प्रत्यज्ञानुभूति सभी को नहीं होती, केवल तन्मय व्यक्ति ही इनके उद्रेक को अनुभव करके साहित्य का विषय बनाने में सक्षम होते हैं। उन सक्षम प्रतिभा के पुजारियों में कुल्लू मण्डल की पीज पंचायत के छोटे से गांव खोड़ा आगे में १३ जनवरी, १६५३ को जन्मे, यहीं पले-बढ़े तथा कुल्लू कॉलेज से स्नातक तक की शिक्षा प्राप्त और संस्कृत में हि.प्र. विश्वविद्यालय से स्वीकृत **कुल्लूवी के संस्कृत मूलक शब्द : एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन** नामक शोध प्रबन्ध से पीएच.डी. की उपाधि से अलंकृत डॉ. विद्याचन्द ठाकुर में जिन का जीवन कला, संस्कृति, लोक साहित्य, लोक संस्कृति, लोक भाषा आदि के विविध रूपों को खोजने तथा उनके रसास्वादन में सदैव हिलोरे लेता दिखाई देता था। वे अपना जीवन कन्दराओं, पहाड़ों, नदियों, नालों, गांवों, वादियों में लोक रूपों को ढूंढते तथा उनके स्वरों को सुनते और उन से निकली, तरंगलहरियों को लेखनी का विषय बनाते हुए समय बिताते थे। यही उनके जीवन के हर पल की कहानी होती थी। उन्हें अन्धेरा भी प्रकाश पुंज की तरह लगता था। यह उनमें भय पैदा नहीं करता था। बल्कि इस गहन अन्धकार में भी कला संस्कृति की रश्मियां निरन्तर उनके मन में कौन्धती रहती थी। जिसके फलस्वरूप यह विदग्ध विद्वान, लोककलाओं को समाज में बरकरार रखवाने के लिए प्रयत्नशील और चिन्तित रहता था। इस के लिए वे पत्रकार संघ माण्डव्य कला मंच, पुरातत्व चेतना संघ, देवप्रस्थ साहित्य कला संगम, मेला समितियों तथा हि.प्र. इतिहास संकलन समिति आदि संस्थाओं को सम्बल देते रहते थे ताकि इन से जुड़े समझदार जन-लोक की अमूल्य धरोहरों को बचा सकें। उनको मार्गदर्शन देकर अपनी अप्रतिम प्रतिभा से सभी को सुवासित करते थे। यह उनकी महानता थी, इसी साधना के फलस्वरूप इन्हें त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका **इतिहास दिवाकर** का सम्पादक चयन किया गया जिसका सम्पादन कार्य इन्होंने अन्त समय तक पूरी दक्षता से निभाया।

इन्होंने सहलेखक के रूप में चम्बा की लोक संस्कृति पर आधारित 'सुनयना' नामक निबन्ध संग्रह प्रकाशित किया। मण्डी में जिला भाषा अधिकारी के पद पर रहते हुए **माडव्य प्रभा** नामक पुस्तक का प्रकाशन किया। जिसमें मण्डी जनपद की श्रुतियों, आस्थाओं एवं परम्पराओं में निहित इतिहास के बिन्दुओं को बड़ी सजगता के साथ एक संग्रह में पिरोया है जो भविष्य में इतिहास लेखकों को लाभप्रद तथा मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है। समय रहते इन समाज की कड़ियों को संग्रहित करना बड़ा महत्वपूर्ण है तभी भाषा विभाग की सार्थकता भी सिद्ध होती है। इन्होंने इसके बहाने अपने पद को भी सार्थक बनाया है।

इन प्रकाशनों के अतिरिक्त इन के शोधात्मक लेख विपाशा, गिरिराज, हिमप्रस्थ, सोमसी आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। समाचार पत्र जनसत्ता में काफी लम्बे समय तक हिमाचल की लोक संस्कृति को लेकर कई कड़ियों को स्तम्भ लेखक के रूप में प्रकाश में लाने में सफल हुए हैं, जिस श्रृंखला की विद्वानों ने प्रशंसा भी की है वे उस समय बर्धापन के पात्र रहे हैं। इन्होंने उधर क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्र पटियाला द्वारा **हिमाचल की सांस्कृतिक धरोहर** विषयक सामग्री संकलन के अन्तर्गत चम्बा, मण्डी और कुल्लू के लोकनृत्यों पर विशिष्ट शोधात्मक आलेख प्रस्तुत किए हैं जो एक प्रकाशन में संकलित हैं। ठाकुर जी भारतीय मानव सर्वेक्षण संस्थान देहरादून द्वारा प्रकाशनाधीन पुस्तक **हिमाचल के जन समुदाय** में सम्पादक मण्डल के सदस्य रहे। कुल्लू से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका सहकार शिखर के सम्पादक मण्डल में भी इनकी भागीदारी उल्लेखनीय रही है। इन्हें सम्पादन कार्य का अच्छा अनुभव था।

इन्होंने सिरमौर, सोलन, चम्बा, मण्डी, बिलासपुर और हमीरपुर में जिला भाषा अधिकारी के पद पर निष्ठा और समर्पित भाव से कार्य किया। उन के कार्य की सभी स्थानों पर जनसामान्य ने आत्मीयभाव से प्रशंसा की जो बहुधा देखा नहीं जाता है पर ठाकुर जी इस बात के अपवाद रहे। यह उनकी कर्तव्य परायणता थी। समय के अन्तराल में हमीरपुर में क्षेत्रीय अधिकारी के रूप में शब्द व्युत्पत्तिविद् (Etymologist) के पद पर तैनात रहे। वे अपने जीवन काल में कभी निराश नहीं हुए जो भाव उनकी कर्तव्य निष्ठा को प्रमाणित करता रहा है। गीता की उक्ति उन पर प्रामाणिक रूप से चरितार्थ होती है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

इनके सामयिक उत्कृष्ट कार्यों को देख कर पुरातत्व चेतना, संघ मण्डी, हिमोत्कर्ष ऊना , जिला सहकार संघ कुल्लू, कुल्लू पीपल्ज ऐसोसियेशन शिमला' आदि संस्थानों ने समय-समय पर इन्हें सम्मानित भी किया। आर्य स्मृति फाउंडेशन समिति मण्डी भी इन्हें सम्मान देने में पीछे नहीं रही। इसने भी इन्हें सम्मान देने में अपना गौरव समझा।

ये मूलतः संस्कृत के विद्वान् थे। संस्कृत की बारीकियों को समझते थे। तभी उनका कहना था कि भारत की समूची लोक संस्कृति संस्कृत भाषा को समझे बिना आरक्षित तथा संरक्षित नहीं की जा सकती है। उन का मानना था कि भाषा, संस्कृति, कला, पुरातत्व से जुड़े अनुसंधान कार्य के लिए संस्कृत का ज्ञाता होना परम आवश्यक है। हिन्दी भाषा प्रचार-प्रसार, भाषा सर्वेक्षण तथा संस्कृति के विविध आयामों का संरक्षण संस्कृत भाषा के ज्ञान के बिना अधूरा है। इसी के फलस्वरूप ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी में लौकिक संस्कृत तथा बौद्धिक संस्कृत का ग्रन्थालय स्थापित होता जा रहा है। इस सम्बन्ध में मेरे से उनकी यदा-कदा चर्चाएं होती रहती थी। कौन-कौन से संस्कृत के भाष्य खरीदे जाने चाहिए ताकि शोध कार्य में सहयोग मिलता रहे। उन्होंने भाषा संस्कृति विभाग में कार्यरत रहते हुए ''हिमाचल प्रदेश के स्थान नाम-व्युत्पत्तिजन्य विवेचनात्मक अध्ययन 'पुस्तक का प्रकाशन विभाग के तत्वाधान में किया। इसके प्रकाशन तक पहुंचाने में मेरा यथासंभव सहयोग इनको रहा तो इन्होंने हार्दिक बधाई के रूप में अपने मन का उल्लास मेरे प्रति लिखित रूप में यूं व्यक्त

किया— **संस्कृत भाषा में आपका गूढ़ ज्ञान है और शब्द व्युत्पत्ति का कार्य बिना संस्कृत ज्ञान के संभव नहीं है।** ये उनके संस्कृत के प्रति स्पष्ट उद्गार थे। खेद है कि उनकी सेवानिवृत्ति के कुछ समय बाद 'व्युत्पत्ति का कार्य विभाग ने बन्द कर दिया तथा बिना सोचे समझे भाषा संस्कृति विभाग ने व्युत्पत्तिविद का सृजित पद भी समाप्त कर दिया। जब कि यह पद हिमाचली के शब्दों की जिन्दगी के लिए और इतिहास के रेखाकंन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण था। इस पद की मृत्यु पर कोई नहीं रोया। थोड़े भी आंसू नहीं बहाए। इस पद के सर्जक भी अभी लम्बी जिन्दगी जी रहे है, न जाने वे क्यों खामोश रहे।

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर में संस्कृत के प्रति सराहनीय अनुराग को तब भी प्रत्यक्षतः झलकते हुए मैंने देखा जब हिमाचल प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री प्रो. प्रेम कुमार धूमल ने दशहरा २०१० के समापनावसर पर देव सदन कुल्लू के ऋषियों के संस्कृत ग्रन्थों का पुस्तकालय खोलने के लिए दो करोड़ धनराशि की व्यवस्था करने की घोषणा की। तब उन का हर्ष भरा स्पष्ट कहना था कि ठाकुर जी अब जिला कुल्लू में देव संस्कृति के संरक्षण एवं अनुसंधान को गति मिलेगी। यह खुशी का विषय है। इसके समर्थन में डॉ. विद्याचन्द ठाकुर ने प्रशंसा भरा पत्र मान्य मुख्यमन्त्री को भेजा। यह उनका संस्कृत प्रेम था। पर थोड़े समय में इस संस्कृत पुस्तकालय की स्थापना की घोषणा में संस्कृत विरोधी जनों की नजर पड़नी शुरू हुई। जिससे देवसदन में संस्कृत पुस्तकालय की स्थापना में धुंधला छाने लगा तथा जो आज तक संस्कृत पुस्तकालय के गगन में छाया रहा एवं उनके वे मनोभाव बिलख गये। पर वे थे संस्कृत के सच्चे भक्त। समय आएगा। उनकी भावना साकार होगी। देवसदन में देवहित में संस्कृत पुस्तकालय स्थापित होगा। ऐसा मुझे विश्वास है।

पुराण कुंज, मकान नं. ३८३/१०
सीसामटी, तह. ढालपुर, जिला कुल्लू (हि.प्र.)

लोकगाथाओं के प्रमाण पुरुष

डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय

विद्या ददाति विनयम्' के साक्षात् प्रमाण एवं लोक और शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् डॉक्टर विद्याचंद ठाकुर जी से मेरी पहली मुलाकात कुल्लू में एक राज्य स्तरीय सम्मेलन में हुई थी। ठाकुर जी का उस सम्मेलन में लोकगाथाओं में सृष्टिप्रक्रिया और वेद विषय पर व्याख्यान हुआ था। उस व्याख्यान को सुनने के बाद ही मुझे उनकी लोकगाथाओं में पैठ की पहचान हो गयी थी। उनके व्याख्यान से पहले मैं बहुत प्रभावित हुआ, व्याख्यान के बाद जब उनसे चर्चा हुई तो ज्ञात हुआ कि ठाकुरजी हिमाचली संस्कृति में किस प्रकार सराबोर हैं। उन्होंने बताया कि यहाँ हर जिले की अपनी विशेषता है। मुझे तुरन्त एहसास हो गया कि उन विशेषताओं से वे भली भांति परिचित हैं। हिमाचली संस्कृति की आत्मा लोकगाथाओं में ही अनुस्यूत है तथा परंपरा के अनुसार वैदिक काल से चली आ रही। यहाँ के लोग अपनी परंपराएं और अपने इतिहास के गौरव को आज भी वैसे ही सुरक्षित रखे हुए हैं जैसे यह आदिम काल में थी।

विदेशी आक्रांताओं के साथ पधारे इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को बहुत तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया है। इस विकृत इतिहास को बदलने का आधार और स्रोत ठाकुर जी लोक गाथाओं को ही मानते थे। उनकी दृष्टि में लोकगाथाएं और लोकसाहित्य ही भारतीय प्राचीन इतिहास के सबसे बड़े साक्ष्य हैं। पुरुष सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त तथा नासदीय सूक्त में सृष्टि प्रक्रिया और मानव का इतिहास जिस प्रकार वर्णित है वही स्वरूप किस प्रकार हिमाचल के गांव में प्रचलित लोककथाओं में मिलता है इसका उन्होंने भरपूर अनुसंधान किया था। उनका अध्ययन लोक और शास्त्र का अद्भुत संगम है। कई बार वे लोकगाथाओं के इतिहास को अन्य साक्ष्यों से बली मानते थे। प्राचीन शास्त्रों में वर्णित पात्र छोटे-छोटे लोकगीतों में किस प्रकार परंपराओं में जीवित हैं। वनवास के काल में पाण्डव पूरे हिमाचल में घूमते रहे, मंदिरों का निर्माण किया और लोगों की मदद की। बाद में उनकी यशोगाथा लोक में प्रचलित हो गई और वह आज तक यथावत् गम्यमान है। महाभारत के वीरों की कथायें ५००० वर्ष पूर्व से अब तक लोक गाथाओं में सुरक्षित हैं। इन गाथाओं को ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में उपस्थित कर ठाकुर जी भारतीय इतिहास के उन तमाम आरोपों को समाप्त करना चाहते थे।

नेरी में मेरी जब भी उनसे मुलाकात हुई तो उन्होंने हर बार इतिहास के प्रति हमारी दृष्टि खोलने की अभिलाषा से लगातार हमारा मार्गदर्शन किया। उनकी देखरेख में नेरी संस्थान में अनेक संगोष्ठियाँ हुईं, जिनमें इतिहास लेखन में लोक गाथाओं का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। उस संगोष्ठी ने इतिहास के प्रति रुचि रखने वालों को एक नई ऊर्जा दी। विशेषकर मुझे बहुत प्रेरित किया।

संस्कृत साहित्य का अध्येता होने के कारण मेरी दृष्टि पहले ऐतिहासिक नहीं थी। हमने संस्कृत शास्त्रों को केवल सामाजिक और आध्यात्मिक उत्थान का हेतु ही समझा है। यद्यपि यह आभास तो होता था कि समाज में लोग भारत के इतिहास को ढंग से नहीं जानते हैं तथापि मैं उदासीन ही था। ठाकुर जी के निर्देशन में यह दृष्टि खुली है। संस्कृत के शास्त्र लोक मर्यादा के संरक्षक के साथ-साथ इतिहास के सबसे बड़े साक्ष्य हैं यह दृष्टिकोण भी पुष्ट हुआ है। माननीय श्री चेतराम जी, निदेशक, संस्थान तथा अग्रज कल्प डॉ. ओम प्रकाश शर्मा जी का विशेष आभारी हूं कि उन्होंने इस मूर्धन्य मनीषी के साथ मेरी मुलाकात करवाई और इतिहास के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण के उत्पादन में सहयोग किया। ठाकुर जी का महाप्रयाण हमारे लिए अपूरणीय क्षति है। भौतिक रूप से भले ही वह हमारे बीच नहीं है किन्तु जिस प्रकार आम का फल मिट्टी में दबकर विशाल वृक्ष और फल देता है उसी प्रकार ठाकुर जी पंचतत्त्व में मिलने के बाद भी अपने विचारों से निरंतर हमारे बीच खिले हुए हैं। उनके अभियान में अब अनेक लोग जुड़ चुके हैं। उनकी एकाकी यात्रा अब कारवाँ बन चुकी है। उनके दिखाए मार्ग पर चलकर हम बहुत जल्दी ही भारतीय इतिहास के सर्वप्रामाणिक साक्ष्य को उजागर कर पाएंगे ऐसी आशा है। ठाकुर जी के दिखाए हुए मार्ग का अनुसरण और अनुपालन ही उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि होगी। भगवान् ऐसे लोकानुगामी को पुनर्जीवन देकर हमारे बीच उपस्थित करें जिससे आगे भी हम उनका मार्गदर्शन प्राप्त करते रहें।

सीधा, सरल और विनम्र स्वभाव उनकी विद्वत्ता के परम प्रमाण थे। विद्या में जितने उन्नत थे विनम्रता में उतने ही अवनत थे। मीठे शब्दों में उनकी डांट भी बहुत प्रेरणादायी थी। किसी भी अज्ञानता को किस प्रकार ज्ञान में बदलना है इसका हुनर उनसे सीखने लायक था। किसी गंभीर विषय को मुस्कुराकर हल करना उनकी विशेषता थी। चेहरे पर उनकी चिरस्मिति चिरस्थायी रहेगी। भारतीय इतिहास की गौरव गाथाओं का गांव में गान पर गंभीर गवेषणा की उनकी वृत्ति सर्वदा प्रेरक है। विद्या चंद जी जितने विनम्र भावकल्पक थे उतने ही सत्यजल्पक थे। उन पर लिखने को बहुत कुछ है किन्तु बस इतने से समझ लिया जाय कि लोक संस्कृति इतिहास और शास्त्र के सन्दर्भ में वे स्वयं में चलते फिरते पुस्तकालय थे। इति शम्।

सह आचार्य
राजकीय महाविद्यालय डोहगी
जिला ऊना (हि.प्र.)

जैसे मैंने जाना

अनुराग पराशर

एम्बुलेंस धीरे धीरे अपने गंतव्य की ओर बढ़ती चली जा रही थी और मैं उस एम्बुलेंस की तरह हिचकोले खाते हुए अपने मन को स्थिर रखने मे नाकामयाब रह रहा था। वो शख्स जिसे मैं चट्टान की तरह शक्तिशाली मानता था जिसे मैं अमर समझता था जो मेरी जिंदगी में फरिश्ते की तरह आया था वह आज निर्जीव एक कम्बल मे लिपटा पड़ा था। मुझे तो लगता हैं कि डा. विद्याचंद ठाकुर जिन्हें हम डी.एल.ओ. साहब कहकर ही बुलाते थे, अभी भी मेरे साथ है हमारे बीच हैं और उसी चिर-परिचित मुस्कान से मेरी हर समस्या का हल कर मुझे संतुष्ट कर रहे हैं जिस तरह वो जिंदगी भर करते रहे हैं। जब एम्बुलैंस सलापड़ के करीब पहुंची तो मैंने उनका कम्बल ठीक करना चाहा। मेरी नजर उनके मुख पर पड़ी। मुख पर वही तेज वही प्रकाश जो ज्योतिपुंज की तरह चमकता था अभी भी दमक रहा था। हमारे साथी जो रात भर जाग रहे थे नींद के झोंको ने उनको अपने आगोश में लपेट लिया था और मैं और डी. एल. ओ. साहिब का पार्थिव शरीर दोनों मानो एक दूसरे से बात कर रहे थे। मुझे स्मरण हो आई वे सभी हमारी बातें जो कभी खत्म होने का नाम ही नहीं लेती थी। कई बार तो सुबह हो जाती थी वो चारपाई पर और रजाई में अथवा उनके चिर-परिचित पुराने लाल सोफे पर। लगता था अब सो जाते हैं, परन्तु फिर राजनीति, साहित्य, भारतीय संस्कृति की विविधता और उनके कार्यालय की चर्चाओं के साथ साथ सांस्कृतिक विरासत पर चर्चा शुरू हो जाती। बीच में दोनों कह उठते-बस एक और चाय पीते हैं फिर सो जाते हैं परन्तु सोना कहां? एक के बाद एक चर्चा। चाय गुड़ की बनती थी। एक बार तो विकासनगर स्थित उनके आवास पर सुबह के सात बज गये और हम सोये बगैर मुंह हाथ धोकर अपने-अपने कार्यालय की ओर चल दिये।

मेरा परिचय उनसे तब हुआ था जब वे डी.एल.ओ. चम्बा थे। मैं विद्यार्थी और वे जिला के आला अधिकारी। क्योंकि दोनों कुल्लू से थे इसलिए जान पहचान होनी स्वभाविक थी। परन्तु इतनी प्रगाढ़ता उम्र में अंतर होते हुए भी मैं कभी सोच भी नहीं सकता था। कभी लगता कि मैं अपने मित्र से बात कर रहा हूं तो कभी लगता कि मेरे गुरु अपने शिष्य को कुछ समझा रहा है। मेरे हम उम्र दोस्त और परिवार वाले दोनों एतराज दर्ज करते थे कि क्या बड़ी उम्र के व्यक्ति से तेरा दोस्ताना है कभी हम उम्र के साथ भी समय व्यतीत कर लिया कर। परन्तु दोस्ती तो हो गई थी उम्र की सीमा के बगैर। फिर तो सुबह और सायं साथ गुजरने का मौका मिलने लगा। तीसरे दोस्त के रूप मे चम्बा में ही पदार्पण हुआ डॉ. सूरत ठाकुर का, जो चर्चा में कम भाग लेते और संगीत और प्रदेश की समृद्ध संस्कृति में लोक गायन और लोक संगीत में अधिक रुचि लेते। हमारे दोनों के प्रश्नों का उत्तर डॉ. विद्याचन्द जी सटीक देते और हमें युवा जोश से बहुत अधिक भरे रहने के बजाय गंभीरता का सन्देश देते। हमने जब एक दो बार युवा अवस्था का बहाना बना कर कुछ थोड़ी घटनाओं को अंजाम देना चाहा तो ऐसी डांट पड़ी

की दूसरी बार बचपना करने की कोशिश भी नहीं की। मित्रता बढ़ती गई। चम्बा में हमने साथ साथ चम्बा की स्थानीय लोक संस्कृति के बारे में अध्ययन किया। स्थानीय लोहड़ी के बारे में अध्ययन किया जो पूरे प्रदेश में अलग तरीके से मनाई जाती है। चम्बा की लोक संस्कृति के हर पहलू पर अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। चम्बा की विरासत को संजोकर रखने वाले लोगों से मिलने का अवसर मिला। यह चर्चा होती कभी मेरे निवास सपड़ी में और कभी डॉ. साहिब द्वारा लिये गए के कमरे दरोबी में उस कमरे से मेरा जहन अभी भी अच्छी तरह वाकिफ है। नीचे एक ही कमरा फिर लकड़ी की सीढियां जिसे हम गेड़ा कहते थे और ऊपर पहुँच कर बड़ी सी रसोई। नीचे वाले कमरे का प्रयोग सोने के लिए कम और नाटी (लोक नृत्य) के लिए अधिक होता था। चम्बा का लोक नृत्य अकेले में कभी नाचते थे लेकिन कुल्लुवी नाटी तो २-२ घंटे चलती थी। गीत उनके कई कैसेट्स में भरे पड़े होते थे। एक हारमोनियमनुमा टेप रिकार्डर और उसमे बार-बार बदलती कैसेट्स। सच कहूं तो ऐसा मजा शादियों और मेलों मे भी नहीं आता था। पसीने से तर-बतर पर लगता था कि नाचने की माला न टूटे।

कवि गोष्ठियों में भाग लेना उन शानदार दिनों मे हमारा रेगुलर फीचर बन गया था। उनके आवास मे जब सोते थे तो सुबह गुड़ की चाय बिस्तर के नीचे पीतल के ग्लास में रखी मिलती थी। वो जब तक एक दो बार गरम करके नहीं लाते तब तक हम पीना शुरू नहीं करते थे। हमसे पहले उठना उनका नित्य कर्म था। फिर स्टोव जलाना। ऊपर स्टोव की आवाज कानों में ऐसी लगती जैसे मानो रेलगाड़ी चल रही हो। रविवार को अखण्ड चण्डी महल में स्थापित उस समय के जिला पुस्तकालय में हम घंटों गुजारते थे। रविवार को गुड़ की खीर जरूर बनती थी। इसी तरह वक्त गुजरता गया और चम्बा से जब मेरी विदाई हुई तो डा. साहिब मुझे छोड़ने शिमला तक आए।

मंडी में डी.एल.ओ. जिला भाषा अधिकारी के रूप मे उनका कार्य सराहनीय रहा। बीरबल जी से हमारी दोस्ती उन्हीं के माध्यम से हुई। मंडी तो हमारा आना जाना बहुत अधिक हो जाता था। मंडी में वो अक्सर कहा करते थे कि मंडी में उनका दिल रम गया है क्योंकि यहाँ पराशर मंदिर जाना अधिक हो जाता है। वह पराशर को पर्यटन स्थल से ज्यादा एक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक लोक धरोहर मानते थे। उन्होंने कभी नहीं चाहा कि सड़क पराशर तक पहुंचे। वह तो अक्सर कहा करते थे कि सड़क पहुँचने से हमारे देव स्थल, आस्था से अधिक पर्यटक स्थान बन रहे हैं। बीरबल जी के साथ उनकी पैदल यात्राएं अब स्मरणीय बन कर रह गई हैं और उन्हीं यात्राओं का परिणाम निकला है कि मण्डी कुल्लू मार्ग पर बीरबल शर्मा जी द्वारा स्थापित हिमाचल दर्शन फोटो गैलरी के रूप में, जिसे आज देश के ही नहीं बल्कि पूरे विश्व के पर्यटक बड़े चाव से देख रहे हैं। फोटो गैलरी का कक्ष डॉ. विद्या चंद जी को उनकी स्मृति मे समर्पित करना निश्चय ही उनके प्रति एक छोटी परन्तु बहुत महत्वपूर्ण श्रद्धांजलि है। यह उनकी ही कला थी जिसे मैं उनकी लीला भी अक्सर कहा करता हूं।

हाँ एक बार का किस्सा मेरी आँखों के आगे आ रहा है जिसका वर्णन करना मैं यहाँ आवश्यक समझता हूँ। हुआ यूँ कि एक बार घर में खेती बाड़ी का कार्य अधिक बढ़ गया जो संभालना भी आवश्यक था। बातों बातों में उनकी माता जी का आदेश हुआ कि नौकरी छोड़ो और यहाँ घर

आकर खोड़ाआगे में खेती बाड़ी संभालो। बस फिर क्या था माता जी का आदेश सिर माथे पर और नौकरी छोड़ने की जिद्द शुरू। मुझे लगता है इस बात का पता उनके सभी मित्रों और शुभचिन्तकों को लगा। सब समझाते रहे कि ठाकुर साहिब नौकरी न छोड़िये वैकल्पिक इंतजाम कीजिये। पर डी.एल. ओ. साहिब की रट कि माँ का आदेश अब परिवर्तित नहीं हो सकता। मैंने भी डा. सूरत राम ठाकुर जी से बात की उन्होंने, उनकी पत्नी कल्पना जी ने बहुत जोर लगाया पर ठाकुर साहिब अपनी जिद्द पर अटल रहे । मैं भी अपने प्रयासों में उनकी माता जी को मिला। उन्होंने ज्यादा न नुकर नहीं की और कहा कि जैसा विद्या चंद चाहे वैसा करे। लेकिन फिर वही बात। मुझे याद है उन्होंने अपने विभाग को त्यागपत्र भी सौंप दिया परन्तु डा. विद्या चन्द जी के सभी मित्रों के संयुक्त प्रयासों से न केवल त्यागपत्र नामंजूर हुआ बल्कि उन्होंने सचिव भाषा व संस्कृति अकादमी के पद पर कार्य भी किया। यह प्रकरण लगभग ५ महीने चला और हमारी बातें दिन रात एक ही विषय पर टिकी रहीं। पर खुदा का शुक्र है की इस बात का अंत सुखद रहा और डी.एल.ओ. साहिब ने इसके बाद कार्य भी प्रभावी किया अन्यथा आपके द्वारा अकादमी और विभाग को दिये गये सहयोग से प्रदेश को वंचित रहना पड़ता।

जब डा. विद्या चंद जी शिमला आये तो कुछ दिन मेरे पास रुके। फिर शुरु में सांगटी में कमरा लिया। मैं सांगटी जाता रहा। एक दिन सपत्नी उनके घर गया तो हम तो बातचीत में तल्लीन हो गए और हमारी श्रीमती सफाई कार्य में लग गयी। उस समय तो उन्होंने कुछ नहीं कहा लेकिन बाद में मुझे सपष्ट निर्देश दिये कि मेरी वस्तुएं और किताबें मैं जहाँ रखता हूँ वहीं ढूंढता हूँ उन्हें न छेड़ा जाए। डी.एल.ओ. साहब को बहुत परेशानी हुई होगी जब उनकी किताबें या अन्य वस्तुएँ व्यवस्थित की गयीं।

मेरी डा. विद्या चंद जी से उनकी अंतिम बीमारी के दौरान बातें होती रहती थी पर मुझे ऐसा कभी नहीं लगा कि उन्हें जाने की इतनी जल्दी है। मेरी अंतिम बार उनसे बात रविवार २६ अक्तूबर २०१७ को हुई जिसमे मेरी तल्खी ज्यादा थी उनके अपनी ओर ध्यान न देने के बारे में। मेरे मुंह से इतना निकल गया कि आप फतेह (उनका बेटा) को फोन दे दो आप तो समझ नहीं रहे हैं। दरअसल फतेह ने मुझे रिपोर्ट्स भेजी थी और मैंने अपने दो परिचित डॉक्टरों से उनकी रिपोर्ट्स पर चर्चा की थी। मेरे बिलासपुर वाले दोस्त डॉक्टर सुरेन्द्र सुमन ने स्पष्ट कहा था कि आप डी. एल. ओ. साहिब को तुरंत पी. जी. आई. चंडीगढ़ ले जाइए। इसी मुद्दे पर बार-बार मेरी चर्चा डी. एल. ओ. साहिब के बेटे और दामाद से चल रही थी। प्रयास पूरी तरह सफल भी हुए परन्तु भाग्य को शायद कुछ और ही मंजूर था और वे पी. जी. आई. चंडीगढ़ भी नहीं पहुँच पाए।

झिड़ी (बजौरा) के पास जब एम्बुलेंस के ड्राईवर ने, जो भी रात भर नहीं सोया था एक दम ब्रेक लगाया तो मेरी तन्द्रा टूटी। शायद केबिन में बैठे हमारे एक साथी ने ड्राईवर से रुकने को कहा होगा। पार्थिव शरीर को बदाह से खोड़ाआगे पहुँचाने के लिए यहाँ बांस खरीदने थे। लगता था बाकी साथियों के साथ मुझे भी नींद आ गयी थी और मेरे मानस पटल पर एक फ्लेश बैक फिल्म सी चल रही थी। मैंने डा. साहिब का फोन माँगा तो उसमे केवल २६ लोगों के ही नाम दर्ज थे। यानि कि सीमित मित्र थे डा. साहिब के। सीमित लेकिन अन्तरंग मित्र यही नाम दूंगा। मैं उनके २६ खास मित्रों में से

एक था जिसमे मेरा नाम भी शामिल था। इसके बाद की यात्रा फिर एक दूसरा स्वप्न थी और बाद में महसूस हुआ कि यही यथार्थ था। बदाह से फिर दूसरे वाहन में उनके पार्थिव शरीर के साथ गांव खोड़ाआगे की यात्रा और खोड़ा आगे पहुंचकर उस दिन के क्रिया कर्म के बाद से बदाह ब्यास नदी के किनारे की अंतिम यात्रा और यहां मेरे डी.एल.ओ. साहब की देह अग्नि मे डाल दी गयी। मैं अश्रुपूर्ण नेत्रों से उनकी देह को पंचतत्त्व में विलीन होते देखता रहा। शायद यही नियति है हम सभी की। विदा मेरे मित्र, विदा मेरे साथी, अलविदा मेरे मोहसिन विदा..........चिरविदा।

शिकवों की फेहरिस्त में ए खुदा
यह शिकवा भी रहेगा तुझसे
छीन लिया क्यों सहारा दे के इतनी जल्दी वह मुझसे।

यही थी डा. साहिब के साथ की अंतिम यात्रा, जिसने मुझे पिछली यादों में ले जाना शायद आवश्यक समझा और मैं आज भी उन्हें अपने आस पास ही मानता हूँ जैसे कह रहे हों मेरा शरीर तो नहीं है पर मैं हमेशा आपके साथ हूँ और साथ ही रहूंगा।

श्री चेतराम जी उनके अंतिम समय तक अन्तरंग मित्र रहे वह न केवल हमीरपुर नेरी के शोध संस्थान के कारण अपितु उनके स्नेहिल स्वभाव के कारण। कई बार डी.एल.ओ. साहिब कहते थे कि चेतराम जी अपने में सम्पूर्ण इंसान है और उनकी मेहनत से ही आज नेरी का शोध संस्थान इस स्तर तक पहुँच पाया है।

उप निदेशक, लो.स.
हि.प्र.स्टेट इलैक्ट्रीसिटी बोर्ड लिमिटेड

हमेशा यादों में रहेगें

कुलदीप गुलेरिया

३१ अक्टूबर २०१७ की सुबह के वो पल जो आज भी हमें याद आते ही झक-झोर देते हैं क्योंकि उन पलों ने हमारे प्रेरणा स्त्रोत व मार्ग दर्शक रहे संस्कृति के मर्मज्ञ, लेखक व विद्वान डॉ विद्याचन्द ठाकुर को इस जहाँ से छिन्न लिया। उनका ३१ अक्टूबर २०१७ को आकस्मिक इस दुनिया को अलविदा कह कर चले जाना हमारे लिए और संस्कृति जगत के लिए अपूरणीय क्षति दे गया। डॉ विद्या चन्द ठाकुर १९८८ में माण्डव्य कला मंच का गठन करवाने से लेकर अपने आखिर वक्त तक मंच के मुख्य सलाहकार और संरक्षक मण्डल के आजीवन सदस्य रहे।

उनकी यादों के झरोखों से कुछ संस्मरण आज भी उनको यादों में जिंदा रखे हुए है वे हमेशा यादों में रहेंगें जिनका संक्षिप्त जिक्र करने जा रहा हूँ।

सन १९८५ की वह बेला जब बल्लभ राजकीय महाविद्यालय मण्डी की संगीत कक्षा में स्नातक तृतीय वर्ष के छात्रों का म्यूजिक पीरियड संगीत प्राध्यापक डा. सूरत ठाकुर ले रहे थे उसी समय वे एक सांस्कृतिक समारोह से सम्बन्धित बातचीत करने के लिए आये थे और कक्षा में मौजूद दो छात्रों अजय जम्बाल और मंजुला गुप्ता के साथ मेरा परिचय उनसे होने पर उनका पहला प्रश्न यह था कि मण्डी जिला की लोक संस्कृति अपने आप में विभिन्न पहलुओं को समेटे हुए है परन्तु यहाँ के पूर्व में रहे विख्यात व जोशीले लोक नृत्य लुड्डी की कहीं भी जानकारी नहीं मिल पा रही हैं क्या आप उस बारे में कुछ बता सकते हैं...? और मैं इस बारे में ठगा सा महसूस करता हुआ कुछ नहीं बता पाया था। परन्तु उन्होंने मुझे लोक संस्कृति की परिभाषा के साथ इसके संरक्षण व संवर्द्धन के लिए इतने सरल व सहज़ तरीके से प्रेरित किया कि मैंने उसी समय संकल्प ले लिया कि बल्ह घाटी का लुड्डी नृत्य जो ९० के दशक तक आते-आते पूर्णतया लुप्त हो चुका है उसे पुनः जीवित करूँगा।

और उनकी प्रेरणा, मार्गदर्शन व सहयोग से जून १९८८ में माण्डव्य कला मंच की स्थापना करके मैनें गाँव-गाँव में जाकर बुजुर्गों से मिलकर तथा शोध कर मण्डी जनपद के प्रधान लोक नृत्य लुड्डी को पुनः जीवित करके उसे मंचीय प्रदर्शन के साथ उसके संरक्षण और संवर्द्धन की दिशा में आगे बढ़ाने की ओर कदम रखा। इस दिशा में मण्डी के श्री बीरबल शर्मा, डॉ सूरत ठाकुर, डॉ सुरेन्द्र भारद्वाज, मुरारी शर्मा व आशा शर्मा का सहयोग मिला जिसके कारण इसके पारम्परिक पहनावे, वाद्ययन्त्र, ताल, लय, गीत व ज्वैलरी आदि को सहेजने के लिए अहम कार्य कर पाया-इसके अतिरिक्त मण्डी का बुढ़डा, नागरीय नृत्य, मण्डयाली गिद्दा लोक नाट्य बॉठ्डा और मण्डी जनपद की दो-तीन लोक गाथाओं पर भी कार्य कर पाया तथा यह सफर जारी है।

लोक नृत्य लुड्डी की उपलब्धि देखी जाये तो १९८८ से अब तक लुड्डी की २००० से ज्यादा देश के २१ राज्यों में व प्रदेश के मेले त्यौहारों, उत्सवों में मंचीय प्रस्तुतियॉ दी जा चुकी है तथा ५००० से ज्यादा महिला पुरुष युवा इस नृत्य प्रशिक्षण के साथ अब तक मंच से जुड़ चुके है इसके अतिरिक्त दूरदर्शन, सीरियल व खास कर मण्डी जिला के किसी भी शिक्षण संस्थान या अन्य समारोह में तब तक समापन नहीं होता जब तक लुड्डी नृत्य न हो।

उन्हीं की रहनुमायी में मण्डयाली लोक-गीतों का संग्रह कर पुस्तक का प्रकाशन किया और ७००० से ज्यादा प्रतियाँ लोगों में मुफ्त बांटी गई और विरासत के नाम से मण्डयाली गीतों की आडियो सी.डी. निर्मित कर बांटी जा रही है उन्ही के प्रयासों से माण्डव्य कला मंच द्वारा १९९० से सम्मान समारोह आयोजित किया जाने लगा जिसमें संस्कृति, साहित्य, समाज सेवा, साक्षरता, पर्यावरण व अन्य विधाओं में कार्यरत विभूतियों को सम्मानित किया जाने लगा। उन्हीं के द्वारा पहली बार मण्डी जिला से २६ जनवरी १९८९ के राष्ट्रीय गणतन्त्र दिवस दिल्ली में माण्डव्य कला मंच के दो लोक कलाकारों शकुन्तला शर्मा और कुलदीप गुलेरिया को हिमाचल की झांकी पर बैठकर प्रदेश का प्रतिनिधित्व करने का मौका मिला जिसके लिए उन्होंने विभाग में मण्डी जिला की पूरी पैरवी की। उन्हीं के कारण पहली बार अन्तर प्रांतीय लोक नाट्य समारोह १९९० में जोधपुर (राज.) में लोक नाट्य बांठ्ड़ा का मंचन करने का मौका मिला।

डॉ विद्याचन्द ठाकुर जब तक मण्डी में रहे तब तक उनका क्वाटर हर समय लोक कलाकारों के लिए खुला रहा। माण्डव्य कला मंच का ऑफिस कम स्टोर भी वहीं रहा। हिमाचल के किसी भी परिचित लोक कलाकार के लिए इनके घर के दरवाजे हमेशा खुले रहते थे। उन्होंने जोगिन्द्र नगर में ऋतु रंग कला मंच, बालू, खूहण, चुहारघाटी, पागणा, बगशाड़, बिठरी और शिवाबदार में भी सांस्कृतिक दलों का गठन किया और जब तक मण्डी में रहे तब तक इन्हें क्रियाशील रखा-और इसके अतिरिक्त बांठ्ड़ा से सम्बन्धित पुराने दलों को जैसे मलवाणा, बडसू, मझवाड़ और पण्डोह आदि को पुनः जीवित करने का प्रयास किया और बुजुर्ग बांठ्डा के कलाकारों को जोड़ कर मंच प्रदान किया परन्तु युवाओं का ग्लैमबर व टी.वी. संस्कृति की ओर आकर्षण की बजह से बाद में ये दल धीरे-धीरे निष्क्रिय होते रहे।

लोक संस्कृति को बढ़ावा देना तथा सांस्कृतिक दलों को जीवित रखने का इनका अनूठा तरीका था जिसका एक उदाहरणः- सन् १९८९ में इन्होंने शिवाबदार में नाटी सांस्कृतिक दल का गठन किया और इन्हें एन.जेड.सी.सी. के माध्यम –१३ से २१ अप्रैल तक पंजाब के कपूरथला, अमृतसर और भटिण्डा में सांस्कृतिक प्रस्तुति के लिए भेजा क्योंकि इस दल में सभी ग्रामीण लोक कलाकार पहली बार बाहर जा रहे थे तो मुझे उनका लीडर बनाकर भेजा ताकि इन्हें कोई भी असुविधा न हो क्योंकि पंजाब में उग्रवादी घटनायें लगातार बढ़ रहीं थीं और अनेकता में एकता कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे थे अतः इस आयोजन के दौरान पंजाब में आये सभी प्रदेशों के सांस्कृतिक दलों के प्रभारियों को

तत्कालीन प्रधानमन्त्री के कार्यालय दिल्ली में बैठक व भोज में ले जाया गया ताकि प्रधानमन्त्री पंजाब की वस्तुतः स्थिति को जान सके।

डॉ विद्या चन्द ठाकुर के मार्गदर्शन में सांस्कृतिक अध्ययन दल का गठन कर हिमाचल के दुर्गम स्थानों की पदयात्रायें आयोजित की गई जिसमें मुख्यतः २८, २६ मई १६८६ चौहारघाटी, ६ से १७ सितम्बर १६८६ पांगीघाटी, १२ से १७ अगस्त १६६० स्पिति और किन्नौर, २०, २१ जुलाई १६६१ मलाणा जनपद, २४ जुलाई से २ अगस्त तक डोडरा क्वार, २६ अगस्त से ४ सितम्बर १६६२ बड़ा भंगाल-मणीमहेश, २७ से २७ अप्रैल सिलाई सिरमौर १६६४ आदि।

इन यात्राओं में यहाँ के जनजीवन, सांस्कृतिक पहलुओं, खान-पान, वेशभूषा तथा प्राचीन ऐतिहासिक पुरातत्विक स्थलों का अध्ययन रहा। इन यात्राओं में लोक संस्कृति के मानवीय मूल्यों की सुरक्षा के लिए जन चेतना जागृत करना तथा लोक संस्कृति के विविध पक्षों के संरक्षण हेतू कार्य करना भी हुआ।

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर का मण्डी जिला से तबादला होने के बावजूद भी वे समय-समय पर मंच की सांस्कृतिक गोष्ठियों व समारोह में भाग लेते रहे और सेवानिवृत्ति के बाद भी यह सिलसिला जारी रहा। उनकी सभी स्मृतियों को अंकित करने में कई दिन लग सकते हैं परन्तु कुछ एक का जिक्र यादों के झरोखों से कर पाया हूँ।

यही कहना चाहूँगा कि हम हमेशा उनकी दिखाई राह का अनुसरण करते रहेगें परन्तु उनकी कमी हमेशा खलेगी। वह हमेशा यादों में रहेगें।

गांव अरठी (माण्डल),
डा० भंगरोटू त० बल्ह,
जिला मण्डी (हि०प्र०)

दो शब्द

दीपक शर्मा

लोक संस्कृति/साहित्य पुरोधा मृदुभाषी, साधारण स्वभाव व स्पष्टतवक्ता परमश्रद्धेय स्व. डॉ. विद्या चन्द जी ठाकुर, स्मृतिपटल पर अंकित होकर आज भी मार्गदर्शक बन कर हमारे मध्य में विद्यमान हैं। सम्मेलनों में मुस्कराहट भरी चुटकियों में विद्वानों के मध्य अपना वैचारिक पक्ष रखना आज भी स्मरण में है। मंच पर मुस्कुराते हुए दो कदम पीछे सरकते हुए किसी ऐतिहासिक बिन्दु पर विवेचना। समीक्षा प्रस्तुत करना उनकी एक विशेषता रही। याद आता है वह स्वर्णिम दिन सन् 2002 का जब अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के तत्वाधान में कुल्लू के मां वैष्णों देवी मन्दिर परिसर में आयोजित राष्ट्रीय परिसंवाद में सम्मिलित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। उसी दिन मेरे पूर्व परिचित साहित्यकार डॉ. सूरत ठाकुर ने उस महान व्यक्तित्व से मेरा विस्तृत परिचय करवाया था। उन दिनों डॉ. विद्याचन्द जो संस्कृति विभाग में शब्द व्युत्पतिविद् के दायित्व पर विराजमान थे।

डॉ. साहब ने मुस्कान भरे आशीर्वचन, पं. जी आप जैसे छिपी हुई प्रतिभाओं की समाज को आवश्यकता है। उनकी इन ऊर्जामयी-ओजस्वी पक्तियों ने मेरे भीतर एक नई उमंग व साहस का प्रत्यारोपण किया। उन्होंने मेरे स्वाभिमान व अन्तःकरण की ज्योति को जगाया। फिर क्या था मेरी वैचारिक क्रान्ति का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। डॉ. साहब ने मेरी उंगली थामी और कलम को मजबूती से पकड़ना सिखाया। लेखनी में नये प्राण फूंके। वैसे लिखने का अभ्यास मुझे कई वर्षों पूर्व रहा। उपयुक्त मार्ग दर्शन व मंच न मिलने के कारण वैचारिक पक्ष सीमित दायरे में रहा। लेखकों की पहचान तथा नवोदित लेखकों को प्रथम पंक्ति में खड़ा करना उनकी विशेषता रही। २००४ में ''सांस्कृतिक एवं साहित्यिक मंच'' निरमण्ड की स्थापना को लेकर ठाकुर साहब के मुझे अमूल्य सुझाव प्राप्त हुए। इस मंच के माध्यम से अपने क्षेत्र में छिपी हुई प्रतिभाओं को आगे लाने में सहयोग मिला। निरमण्ड क्षेत्र के लोक गायक, पौराणिक गाथाकारों को अन्तर्राष्ट्रीय इंदिरा गांधी कला केन्द्र दिल्ली तथा अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना शोध संस्थान नेरी - हमीरपुर में माननीय अखिल विश्व हिन्दु परिषद् के अध्यक्ष अशोक सिंघल जी के समक्ष प्रस्तुत करना डॉ. विद्या चन्द जी की ही वैचारिक उपज है। २ जनवरी २००७ से १२ जनवरी २००७ तक निरमण्ड क्षेत्र के गाथाकारों द्वारा रामायण के लोक प्रसंग की विस्तृत डाक्यूमैंटेशन हुई थी। इस दौरान हि.प्र. के विविध क्षेत्रों में गाथाकारों को यह आमन्त्रित किया गया था। मैं शोध संस्थान नेरी में सृष्टि गाथा को लेकर निरमण्ड के एक का दल सहित पहुंचा था। स्वयं ठाकुर साहब इन अवसरों पर मार्गदर्शन के लिए उपस्थित रहे। अखिल

भारतीय भाषा शोध संस्थान मैसूर के लिए हम जैसे दूर दराज क्षेत्र के लेखकों के नाम स्वीकृत करना ठाकुर साहब की देन है।

भाषा विभाग में शब्द व्यत्पतिविद् के पद पर रहते हुए इनके सानिध्य में ''स्थान नाम'' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को खंगाल कर एक बहुत बड़ा इतिहास सामने आया। दो बार कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी में सचिव के रूप में - हि.प्र. में रामायण के लोक प्रसंग, नव संवत्सर विशेषांक सोमसी हि.प्र. के लोक संस्कार गीत इनकी विशिष्ट उपलब्धियां रही हैं। शोध संस्थान नेरी में वैचारिक पक्ष की कमान इन्होंने बड़े साहस धैर्य व निर्भीकता के साथ संभाली।

दिवंगत आत्मा के प्रति दो शब्द –

खोड़ा आगै तेरी शंवी शीले दोगा।
मेरे विद्या चन्दा ठाकरा,
तौ ना सौकदै विसरो, देशा ग्रांवे लोगा।
तुआ मेरेआ विद्याचन्द, बिजी गैणी रा तारा,
मांझी बात, छणडिआ हामा, किलै छाडौ सणसारा।
कौसरे साहरै छाड़ा तै शोध संस्थान,
कुण ढाका म्हारे हा थड़ू, कुण खौटा म्हारो कामा।
डाड़ी पाचीए ई भाड़ा तेरी लोतमी देवी,
सौरगा का बाबा भाड़ा तेरो उछब रामा।
लाड़ी बाउली रोआ तेरी हाथड़ू मरोड़ी,
बेटो रोआ फतेश्वरा, बेटी पैरिद्रां देवी,
किहूदी डेउओ म्हारे बाबा मांझी बाता हामा छोड़ी।
विद्या चन्दा बौणी आहे झुलपू तारौ,
राची मेड़े सुपणे, जिउढू डाहे राजी म्हारो।
बौडौ सौ नैही जुण इतिहास पौढ़ा,
बौड़ौ सौ आसा जुण इतिहास गौढ़ा।
विद्‌वान सौ नै ही जुण आपणे बरवाण कौरा।
विद्‌वान सौ आसा जुण विद्‌वान निर्माण कौरा।

ईश्वर से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति मिले तथा उनके पद चिन्हों पर हमें आगे बढ़ने की शक्ति मिले।

गांव व डा. निरमण्ड,
पिन - १७२०२३ (हि.प्र.)

उत्कृष्ट भावना का प्रतीक

भूमि दत शर्मा

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान की आधार शिला के समय से ही जुड़ा व्यक्तित्व, ठाकुर विद्याचन्द जी के रूप में रहा है अपनी कर्तव्य-निष्ठा, संस्कृति एवं लोक में सृष्टि का उन्नयन उनकी महत्वकांक्षा एवं चिन्तन का अद्‌भुत मन्थन रहा। मुझे वर्ष २००३ से ही ठाकुर जी के सम्पर्क में रहने मिलने और विचार-विमर्श करने का सौभाग्य प्राप्त रहा है।

ठाकुर विद्याचन्द जी का जब भी शोध संस्थान में एक सप्ताह या दो सप्ताह के लिए प्रवास रहता, वे सब कुछ छोड़ कर केवल अपने विषय पर ध्यान केन्द्रित करते और उसे समय सीमा में पूर्ण करते थे। विशेष कर इन्हीं व्यस्त लम्हों में मुझे उनके साथ कुछ समय लेकर वार्तालाप करने का अवसर प्राप्त हुआ है, इतिहास दिवाकर पत्रिका के सम्पादकीय विषयों पर चर्चा करना, उनके द्वारा लिखी गई विभिन्न पुस्तकों के सम्बन्ध में चर्चा तथा शोध संस्थान के पुस्तकालय के महत्व पर खुल कर अपने विचारों को व्यक्त कर मुझे प्रभावित किया है। उनका मत रहा कि भारतीय इतिहास की धरोहर हमारे प्राचीन ग्रन्थ वेद, पुराण, दर्शन, श्रुतियां, स्मृतियां एवं लोक में व्यापक विविध विधाओं में ज्ञान समाहित है। उनकी चिन्ता हिमाचल के विभिन्न जिलों का इतिहास और ऋषि परम्पराएं एवं देव दर्शन की संस्कृति को भी स्थान मिले जिससे वर्तमान परिदृश्य के प्राणी लाभान्वित हो सके।

ठाकुर विद्याचन्द ने हर विचार को व्यवहारिकता दी और उसे कमलबद्ध किया। नेरी शोध संस्थान के लिए अपनी अर्जित निधि से धन व्यय कर पुस्तकें खरीद कर दी। यही भावना पुस्तकालय के प्रति उनकी धारणा को पुष्ट करती है। वे चाहते थे कि यहां का पुस्तकालय एक आदर्श और उच्चकोटि का पुस्तकालय बने जहां ज्ञान का असीम भण्डार भावी पीढ़ियों के लिए संचित रहे। विद्याचन्द जी का ठाकुर रामसिंह जी के साथ गहरा सानिध्य और सम्बन्ध रहा। श्री चेतराम गर्ग पर भी विद्याचन्द जी के सानिध्य की छाप पूर्णतयः अंकित है क्योंकि वे लगातार उनके साथ कार्य करने में क्रियाशाली रहे।

मुझे २०११ में उनकी सेवानिवृति के समय उनके गांव खोड़ा आगे कुल्लू में श्री चेतराम गर्ग तथा अन्य साथियों के साथ इस उत्सव में शामिल होने का अवसर मिला। मैंने देखा उनका अपनी संस्कृति पर कितना अटूट विश्वास था घर पहुंचते ही पहले अपने देवता की पूजा की फिर परिवार से मिलना और फिर अन्य आगन्तुकों के साथ चर्चा और हम लोगों को स्थानीय नियमों की जानकारियां देना, अदभुत दृश्य था।

पुस्तकालयाध्यक्ष
शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर

सहज एवं समावेशी व्यक्तित्व

मुरारी शर्मा

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर हिमाचली लोकसंस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान ही नहीं बल्कि एक सहज, सरल और लोकजीवन के मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित एक ऐसा व्यक्तित्व थे। जो अपनी माटी और परम्पराओं के उच्च मूल्यों के न केवल पैरोकार थे, अपितु लोकसंस्कृति के संरक्षण और संवर्धन को ही अपने जीवन का ध्येय मानकर चल रहे थे। इस दिशा में उनके द्वारा किए गए प्रयासों को न तो कभी भुलाया जा सकता है और न ही समाज उनके इस योगदान से ऋण हो सकता है।

डॉ. विद्या चन्द जिन्हें हम बस केवल ठाकुर साहब कहकर बुलाते थे .... मेरा उनसे परिचय वर्ष १९८६-८७ में हुआ जब वे मंडी में भाषा अधिकारी बनकर चम्बा से आए थे। अभी उन्हें मंडी आए हुए शायद दो ही दिन हुए थे.... और मैं उनके कार्यालय में जा पहुंचा। उन दिनों भाषा विभाग की ओर से सर्वेक्षण योजना चल रखी थी और विभिन्न क्षेत्रों में कुछ सर्वेक्षक नियुक्त कर रखे थे। जो समय-समय पर भाषा, संस्कृति और अन्य पहलुओं पर गांव-गांव जाकर सर्वेक्षण कर अपनी रिपोर्ट विभागीय कार्यालय में देते थे। डॉ. साहब से यह मेरी पहली मुलाकात थी। मुझसे परिचय के दौरान उन्होंने बल्ह घाटी के बारे में विस्तार से जानकारी हासिल कर ली। पहली ही मुलाकात में हम दोनों ऐसे घनिष्ठ मित्र बन गए मानों कई सालों से जान पहचान हो।

डा. साहब चम्बा में करीब पांच साल सेवाएं देकर आए थे। वे बात-बात पर चम्बा का जिक्र छेड़ देते वहां के लोक जीवन, गद्दी संस्कृति, सुनयना के जनपद से प्रो. नरेन्द्र अरुण के साथ सह लेखन में उनकी किताब चम्बा की संस्कृति पर प्रकाशित हुई थी.... वहां के सांस्कृतिक दलों के बारे में बात करते हुए वे कहते कि मंडी तो संस्कृति के लिहाज से शुष्क क्षेत्र है। इस बात पर हम दोस्ताना माहौल में उनसे बहस करने लग जाते, इस बहस में हमारे दोस्त विजय विशाल और कुलदीप गुलेरिया भी शामिल हो जाते। यह तो बात का एक पहलु होता, वहीं दूसरी ओर उनका प्रयास रहता कि मंडी में भी चम्बा और कुल्लू की तर्ज पर सांस्कृतिक संस्थाओं का गठन किया जाए। ऐसी संस्थाएं जो सही मायने में अपने क्षेत्र की लोक संस्कृति की संवाहक बनकर उभरे। उनका पहला प्रयास शिवाबदार क्षेत्र में पराशर कला मंच की स्थापना करने के साथ हुआ। इसके पश्चात् उन्होंने बालीचौकी क्षेत्र के खूहण में सांस्कृतिक दल का गठन करवाया, बालू क्षेत्र में भी सांस्कृतिक मंच का गठन उन्होंने करवाया। इसके अलावा ऋतु रंग कला मंच जोगिन्द्रनगर, प्राचीन बांठड़ा क्लब मलवाणा और मांडव्य कला मंच जैसी सांस्कृतिक संस्थाओं का गठन करवाया।

उन दिनों मैं बतौर फ्रीलांसर लेखन करता था। पत्रकारिता भी करता था। सांस्कृतिक रिपोर्टिंग की ओर मेरा झुकाब भी डॉ. विद्याचन्द जी की वजह से ही हुआ और मण्डी जनपद की सांस्कृतिक विविधता का अध्ययन करने में वे मेरी मदद करते रहते। हालांकि, उन दिनों मेरी उम्र पचीस-छब्बीस के आसपास थी और स्वभाव में उच्छृंखलता भी थी। मगर डॉ. विद्याचन्द ठाकुर अपने मिलनसार स्वभाव के कारण उम्र के इस फासले का अहसास नहीं होने देते थे। लोक संस्कृति पर और गंभीर कार्य करने की दिशा में उनका एक और प्रयास था पर्वतीय संस्कृति की पत्रिका शैलपुत्र का प्रकाशन। एक सहयोगी की तरह न केवल इस पत्रिका के लिए सामग्री जुटाने में मदद करते बल्कि प्रूफ रीडिंग से लेकर संपादन सहयोग भी करते। १९८७ से २००० तक इस पत्रिका को उनका सहयोग मिलता रहा। डॉ. विद्याचन्द ठाकुर देव पराशर के परम भक्त थे। शैलपुत्र के प्रवेशांक में पराशर पर उनकी कवर स्टोरी थी। उनके साथ पराशर की कई यात्राएं की। इन यात्राओं में यहां के धार्मिक पक्ष की ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक एवं पुरातात्विक महत्व के बारे में गहन जानकारी मिलती रही। उनके साथ उनके गांव पीज खोड़ागे में पहली बार काहिका देखने का अवसर मिला। चार दिन तक चले इस आयोजन के हर अनुष्ठान के बारे में मुझे उन्होंने जानकारी दी। इस आयोजन को वरिष्ठ छायाकार बीरबल शर्मा ने छायांकन और वीडियोग्राफी के तौर पर कवर किया। यह लेख साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित हुआ तो उनकी खुशी का ठिकाना नहीं था। जैसे यह लेख मेरा नहीं बल्कि उनका छपा हो। साहित्य और संस्कृति के प्रति उनका समर्पण गजब का था। वे नवोदित लेखकों को यहां प्रोत्साहित करते। वहीं वरिष्ठ लेखकों के साथ भी उनका संवाद लगातार जारी रहता। यही कारण था कि चाहे प्रगतिशील हो चाहे जनवादी अथवा कोई और विचारधारा के लेखक सभी उनकी विद्वता के कायल थे। वे सबसे सहृदयता से मिलते और कई मुद्दों पर बहस करते। मगर इस बहसबाजी में किसी भी तरह का मनमुटाव और कोई पूर्वाग्रह नहीं होता। इसका इस कारण यह भी था कि वे अपनी बात पर अड़े नहीं रहते दूसरों की बात का भी सम्मान करते थे। उन्होंने अनेक सांस्कृतिक संस्थाओं का गठन किया। युवाओं को लोक संस्कृति के प्रति प्रेरित किया, लोक संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में भी उनका योगदान कम नहीं था। मंडयाली लोक नाट्य बांठड़ा को मंच प्रदान करने तथा इसके प्रलेखन और वीडियो फिल्मांकन करवाने में भी बतौर जिला भाषा अधिकारी उनका बहुत योगदान रहा। इसके अलावा मंडी के देवालयों पर अपनी पुस्तक 'मांडव्य प्रभा' के माध्यम से उन्होंने यहां की समृद्ध संस्कृति के संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साधारण कलेवर में छपी यह पुस्तक शोधार्थियों और मंडी जनपद को जानने वालों के लिए मार्गदर्शिका है।

१३३/७ मोती बाजार मंडी
पिन - १७५००१ (हि.प्र.)

आह डॉ. विद्या चन्द ठाकुर जी

छेरिंग दोरजे

"विद्या चन्द ठाकुर जी इस नश्वर संसार से विदा हो गए हैं।" यह असह्य समाचार सुनकर मन स्तंभित हो गया। 'अनित्यत्व' का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। मेरा परिचय डॉ. विद्या चन्द ठाकुर जी से विगत शताब्दी के अन्तिम चरण में टांकरी भाषा की लिपि प्रशिक्षण शिविर काल में, लाल चन्द प्रार्थी कला केन्द्र ढालपुर कुल्लू में हुआ था। इस प्रशिक्षण का आयोजन हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा किया गया था और ठाकुर जी अकादमी के सचिव थे।

तत्पश्चात् हमारी मुलाकात नेरी (हमीरपुर) में माननीय इतिहास पुरुष ठाकुर राम सिंह जी द्वारा स्थापित ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान के उद्घाटन के समय हुई थी। वास्तव में हमारी आत्मीयता वहीं से अंकुरित हुई। ठाकुर जी को शोध संस्थान के प्रस्तावित नव प्रकाशनार्थ पत्रिका 'इतिहास दिवाकर' का अवैतनिक सम्पादक का दायित्व सौंपा गया था। मैं संस्थान में गाहे बगाहे आयोजित होने वाले सम्मेलनों में भाग लेने जाया करता था। हम दोनों हिमालयी आदिम सभ्यता की जटिलताओं के बारे में घण्टों वार्तालाप करते थे। इनमें संस्कृति, इतिहास, देवधर्म, गूर तथा देव पुजारी, लोक मान्यताओं और सामाजिक ओपचारिकताएं शामिल होते थे।

ठाकुर जी के निधन से नेरी शोध संस्थान न केवल एक कर्मठ विद्वान लेखक के सेवा से वंचित हुआ है बल्कि एक देदीप्यमान विचारक और आत्मतत्वज्ञ को खो दिया है।

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर के देहावसान से कुल्लू तथा लाहुल स्पिति के साहित्यिक मण्डल को क्षतिपूर्ति के लिए 'श्री काल चक्र' को भी राह देखना पड़ेगा।

ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

गांव बारीतुनी, खराहल,
जिला कुल्लू (हि.प्र.)

अखण्ड प्रेरणा पुञ्ज

डॉ. विकास शर्मा

लगभग तीन वर्ष पहले मेरा डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी से परिचय हुआ। नेरी शोध संस्थान में मेरा आना-जाना प्रायः नित्य का ही है। उसी क्रम में एक दिन वेशभूषा से बिल्कुल ही साधारण से व्यक्ति से मेरा परिचय माननीय श्री चेतराम जी ने करवाया। अपने राष्ट्र एवं समाज के हित के लिए भावना से इतिहास लेखन के प्रति समर्पित उस महान आत्मा की अनुभूति पहली मुलाकात में ही हो गई लेकिन एक विचार आया कि वे तो एक अत्यन्त ही साधारण मानव हैं।

ठाकुर विद्याचन्द जी का संस्थान में आना और कुछ दिन प्रवास के पश्चात् जाना निरन्तर चलता रहता था। एक बार माननीय चेतराम जी ने मुझे दूरभाष पर बताया कि ठाकुर जी कुछ बीमार हैं और टायफाइड हो गया है लेकिन वे स्वयं संस्थान में नहीं हैं। मैं संस्थान में गया तो ज्ञात हुआ कि विद्याचन्द जी आराम कर रहे हैं। थोड़ी देर वहीं पर बैठा इतनी देर में ठाकुर जी उठ गए। चाय के दौरान उन्होंने मुझे थोड़ा-थोड़ा संस्थान में हो रहे इतिहास शोध कार्य के बारे में समझाया उनके सरल सादे शब्दों ने मेरे ऊपर विशेष असर किया।

इसके उपरान्त जब भी ठाकुर विद्याचन्द जी संस्थान में प्रवास करते तो कुछ समय उनके सानिध्य में रहने का अवसर मिल जाता। ऐसा सरल व्यक्तित्व चेहरे पर लेश मात्र भी चिन्ता नहीं और हर समय एक हल्की सी मुस्कान अनायास ही जीवन के प्रति मेरी भावना अधिक सकारात्मकता से भर देती।

अपने संस्थान के कार्य या यू कहें कि इस सप्त हिन्दू समाज को अपने पुरातन वैभव एवं संस्कृति से साक्षात्कार कराने की लगन में ठाकुर विद्याचन्द जी इस तरह लीन थे कि वे दिन और रात कार्य करना चाहते थे। उनके इस समर्पण भाव से कोई भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। एक अन्य गुण ठाकुर जी में था अपनी बात को दृढ़ता एवं विनम्रता से रखना और दूसरों के विचारों को ध्यानपूर्वक सुनना पूरी संवेदनशीलता से।

फिर एक दिन सुबह माननीय चेतराम जी का फोन और ठाकुर जी के निधन का अत्यन्त दुःखद समाचार मिला। विश्वास करना मुश्किल था और पूरा शरीर सिहर उठा। उस दिव्य आत्मा का विचार-दर्शन सदैव हमारा मार्गदर्शन करता रहेगा।

वैज्ञानिक, उद्योनिकी एवं वानिकी
महाविद्यालय नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.)

एक महान लेखक के सम्पादकीय

डॉ. विवेक शर्मा

ठाकुर विद्याचन्द जी जब इतिहास दिवाकर के मुख्य सम्पादक के दायित्व का निर्वहन कर रहे थे तो एक बार मैंने अपना अनुसंधानात्मक लेख प्रकाशन हेतु प्रेषित किया। उस लेख को लिखने से पूर्व मुझे जब चेतराम गर्ग जी प्रथम बार मिले थे तो उन्होंने मुझे नेरी शोध संस्थान के ध्येय वाक्य **नामूलं लिख्यते किञ्चित्** वाक्य के संदर्भ का पता लगाने को कहा था। मेरी आयु छोटी थी और अनुभव भी कम था। अतः मैंने अब तक इस पंक्ति को सुना नहीं था। मैं दिन रात इस पंक्ति का संदर्भ जानने में लग गया। इसी बीच मैंने राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान एवं हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों में भी गया लेकिन इस पंक्ति का पता नहीं चला। अन्त में साधु आश्रम होशियारपुर के पुस्तकालय में गया जहां मुझे उक्त पंक्ति का संकेत मिला। मैंने अपने लेख में लिख दिया यह पंक्ति मल्लिनाथ ने अपनी व्याख्या में लिखी है। लेकिन दुर्भाग्य से मैं इसके पूर्ण संदर्भ का उल्लेख नहीं कर सकता। इस पर विद्याचन्द जी नहीं माने और कहने लगे कि संदर्भ तो पूरा चाहिए। यहां मैं भी मानने को तैयार कहां था। मैंने उनसे कहा कि इस संदर्भ का प्रकाशन ही न करें, तो उन्होंने कहा कि 'तुम इतनी कम आयु में इतना सुन्दर लिखते हो, तुम लेखन की धरोहर हो। मैं जानता हूं कि तुमने इस शोधपत्र को बहुत परिश्रम से लिखा है, अतः तुम्हें निर्देशित करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं। उनकी इस बात से प्रेरित होकर मैंने उक्त पंक्ति के पूर्ण संदर्भ को उनके सामने प्रस्तुत किया। इस प्रसंग में उन्होंने मुझे यह सीख दी कि लेखन में अथक परिश्रम आपेक्षित है।

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी के लेखन का जो विराट स्वरूप था उसका कुछ संकेत उनके सम्पादकीयों के अध्ययन से प्राप्त हो जाता हैं। उनके ये कालजयी सम्पादकीय निःसन्देह उत्कृष्ट लेखन के उदाहरण हैं। इतिहास दिवाकर पत्रिका के प्रवेशांक कलियुगाब्द ५११०, विक्रमी संवत् २०६५ (अप्रैल) २००८ के समय समर्थ गुरु राम दास की ४००वीं जयन्ती का शुभ अवसर था, अतः उस वर्ष के इतिहास दिवाकर के सभी अंकों में समर्थ गुरु राम दास जी की कालजयी कृति ''कृतिबोध'' के अंशों को विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत करने का गुरुतर एवं पुनीत कार्य ठाकुर विद्याचन्द ठाकुर जी ने किया।

उन्होंने अपने सम्पादकीय से इतिहास दिवाकर पत्रिका की चिन्तन और प्रवृत्ति को भी निश्चित किया - जय जय रघुवीर समर्थ में अगाध विश्वास के साथ इतिहास दिवाकर लोक और राष्ट्र के वैभवशाली प्रामाणिक इतिहास को प्रकाश में लाने के लिए निरन्तर निष्ठापूर्वक प्रयासरत रहेगा।[१]

डॉ. विद्याचन्द जी के एक श्रेष्ठ एवं अनुभवी इतिहासविद् होने का संकेत उनकी इस पंक्ति से लगता है कि ''अतीत कभी व्यतीत नहीं होता''[२], वह किसी न किसी रूप में संरक्षित रहता है।

उन्होंने उन इतिहासकारों की आलोचना की जो इतिहास में भारत की लोक परम्पराओं के योगदान को नगण्य मानते हैं। अतः इसी संदर्भ में आगे डॉ. जी कहते हैं कि "**अतीत की प्रासंगिकता राष्ट्र, समाज और मानव जीवन में निरन्तर बनी रहती है।**[३] इतिहास के उचित उपस्थापन के संदर्भ में डॉ. विद्याचन्द जी का मत था कि "**केवल पराजय की ही कहानियां न कहे, अपितु उसमें गौरवशाली तथ्यों का उल्लेख प्रमुखता से हो तथा जिससे इतिहास राष्ट्रमानस के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सके ओर जिसे पढ़ कर हम गौरव से अपना सर ऊंचा कर कह सकें कि भारत विश्व का गुरु रहा है एवं आज भी इसमें विश्व गुरु बनने का पूर्ण सामर्थ्य है।**[४] उनकी दृष्टि में इतिहास का वास्तविक स्वरूप ही हमें सामने लाना होगा। जैसे कि उन्होंने महाभारत के प्रथम श्लोक को उद्धृत करते हुए कहा है – **सत्यं पर धीमहि** अर्थात् हम परम सत्य का ध्यान करें। वाणी के विलास मात्र में नहीं, जीवन में परम अर्थ के विवेचन से ही इतिहास में सत्यं पर धीमहि का आलोक प्रज्ज्वलित है।

भारतीय कालगणना वास्तव में एक अलौकिक गणना है। जो सूक्ष्म से ब्रह्मा की आयु पर्यन्त काल के विभाजन को व्यक्त करती है। ऐसी भारतीय काल गणना का विस्तार निश्चित रूप से दुनिया की नई सभ्यताओं के काल विमर्श को बौना साबित कर देती है। काल की यह भारतीय अवधारणा को पुनर्स्थापित करने में ठाकुर रामसिंह जी के बाद यदि किसी का अभूतपूर्व योगदान है तो वह डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी का है। भारतीय काल गणना को डॉ. विद्याचन्द जी ने न केवल गंभीरता से समझा अपितु उसे हिमाचल कला संस्कृति अकादमी हिमाचल प्रदेश में सचिव के पद पर रहकर सोमसी त्रैमासिक पत्रिका का अप्रैल-जून २००२ नववर्ष संवत्सर विशेषांक प्रकाशित कर भारतीय चिन्तन को साकार रूप देने का सफल प्रयास किया।

काल के विषय में डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी ने कई बार अपने सम्पादकीयों में प्रतिपादित किया है कि भारतीय संवत् "**कालगणना का सीधा सम्बन्ध काल से है, इसलिए काल से जुड़ी कालगणना ही वैज्ञानिक कालगणना मानी जा सकती है।**[५] काल के महत्त्व को जानने वाले डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी ने स्पष्ट रूप से कहा है **विक्रमी संवत् हमारा राष्ट्रीय स्वाभिमान है।** [६]

ठाकुर जी के सम्पादकीयों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धर्म-संस्कृति पर उनकी अपार श्रद्धा थी। श्री राम भारत की पहचान है, राम भारत की अस्मिता है। राम से अलग करके भारत की कल्पना भी नहीं की जा सकती। राम केवल भारत के राजा ही नहीं अपितु भारत की प्रशासन व्यवस्था के प्रतिरूप है। भारत के सम्पूर्ण सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय मूल्य श्रीराम से सम्बन्धित हैं। इसलिए ही आज के समय में भी भारत के प्रतिष्ठित प्रबन्धन संस्थानों में राम राज्य की प्रबन्धन व्यवस्था को पढ़या जा रहा है। जैसे कि आई.आई.एम. अहमदाबाद में श्रीराम की राज्य व्यवस्था को आदर्श राज्य के रूप में उनका चरित्र प्रबन्धन एवं व्यापार के विद्यार्थी इस बात से परिचित हो सकें कि किस तरह श्रीराम विपरीत परिस्थितियों में भी आपने मूल्यों एवं आदर्शों से च्युत नहीं हुए। अतः डॉ. विद्याचन्द जी ने अपने एक सम्पादकीय में श्रीराम के प्रति अपनी असीम श्रद्धा को उपस्थापित करते हुए गोस्वामी तुलसीदास के वचन को उद्धृत किया है – **राम अनन्त, अनन्त गुण, अमित कथा विस्तार**[७]। धर्म के विषय में उनका मानना था धर्म के अभाव में सभी उपलब्धियां महाविनाश का कारण

बन जाती हैं।[८] डॉ. विद्याचन्द जी धर्म को सर्वस्व मानते थे। उनका कहना था कि धर्म ही हमारे देश की पहचान है। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द जी के शब्दों को उद्धृत करते हुए लिखा है कि ''भारत का मेरूदण्ड राजनीति नहीं है, व्यावसयिक अधिपत्य भी नहीं है और न यान्त्रिक शक्ति ही है। भारत का मेरुदण्ड धर्म है। केवल धर्म ही हमारा सर्वस्व है। हमारे धार्मिक एवं राष्ट्रीय ग्रन्थ श्रीमद्‌भगवतगीता के प्रति विद्याचन्द जी की असीम श्रद्धा थी, वे मानते थे कि **वास्तव में श्रीमद्‌भगवतगीता के अध्ययन और उस पर आचारण से ही वर्तमान निराशा भरा वातावरण, आशा के वायुमण्डल में परिवर्तित होगा और गीता के कर्मयोग द्वारा जगत के उज्ज्वल भविष्य का सृजन होगा।**[९]

गौ के महत्व को सम्पादित करते हुए ठाकुर जी कहते हैं ''भारतीय परम्परा में गाय अध्यात्म मार्ग की वैतरणी है। गाय भारत की संस्कृति है। गाय पर ही हमारी अर्थव्यवस्था और भौतिक सम्पन्नता निर्भर है। ट्रैक्टर, ट्राली से खेतों की जुताई तथा रासायनिक खादों के प्रयोग से भूमि बंजर होती जा रही है। साथ ही उन्होंने अपने सम्पादकीय में आह्वान करते हुए कहा – अतुल सम्पदा की स्वामिनी गाय का संपोषण और सम्मान करना हमारा परम कर्तव्य है। इसी में प्रकृति और मानव की सुरक्षा सन्निहित है।[१०]

डॉ. विद्याचन्द जी सौम्य स्वभाव के व्यक्ति थे लेकिन वे राष्ट्र एवं संस्कृति विरोधी तत्वों का प्रखरता से विरोध करते थे। अपने एक सम्पादकीय में एक ऐसी ही घटना का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा ''दिल्ली विश्वविद्यालय के बी.ए. द्वितीय वर्ष, इतिहास ऑनर्स के पाठ्यक्रम मे 'कल्चर इन एशियंट इण्डिया' पुस्तक के 'थ्री हण्ड्रेड रामायनास' निबन्ध में जो सामग्री दी गई है, उसमें राम कथा के पारम्परिक सनातन संस्कार को विकृत करने की अलगाववादी मानसिकता दिखती है।[११] डॉ. विद्याचन्द जी का मानना था कि अंग्रेजी मानसिकता का परिपालन गांधी जी का मार्ग कभी नहीं हो सकता है। उनके शब्दों में कहें तो ''भारत के दासता - गर्वित मनोवृत्ति के अंग्रेज- परस्त लोग जो गांधी जी के भी अनुयायी बनते हैं, वे युग-युगीत ऐतिहासिक सत्य के धरातल पर गांधी जी के चिन्तन के इन गहन विचारों को आत्मसात् करें। यही गांधी जी के प्रति सच्ची निष्ठा होगी अन्यथा केवल स्वार्थ सिद्धि के लिए गांधी भक्ति से मजबूरी का नाम महात्मा गांधी की उक्ति चरितार्थ होती है।[१२] भारत माता की जय का उद्‌घोष सकल विश्व में निरन्तर सत्यं शिवं सुन्दरम् की कल्याण भावना के साथ विस्तार पाएगा' अपने इस वाक्य द्वारा डॉ. विद्याचन्द जी ने भारत भक्ति को ही भारत की उन्नति में अनिवार्य माना है।[१३]

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी के सम्पादकीयों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वे देश समाज की कई महान् विभूतियों से परिचित रहे थे। स्वर्गीय चेतराम जी से सम्बन्ध विशेषांक में उन्होंने जो सम्पादकीय लिखा उससे यह पता चलता है कि स्वर्गीय चेतराम जी को वे निकटता से समझते थे।[१४] अपने एक अन्य सम्पादकीय में उन्होंने जो महर्षि अरविन्द के जीवन को जो सारगर्भित शब्दों में प्रस्तुत किया वह इस बात का द्योतक है कि भारत के राष्ट्रपुरुषों का अध्ययन उन्होंने गंभीरता से किया था।[१५] ठाकुर रामसिंह जी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी, उन्होंने अपने सम्पादकीय में लिखा है ''कुछ लोग

होते हैं जो इतिहास लिखते हैं, लेकिन ऐसे लोग बहुत बिरले होते हैं जो इतिहास बनाते हैं। इन विरले लोगों में ठाकुर रामसिंह जी एक हैं। लक्ष्य पूर्ति के ध्येय से जीवन पर्यन्त पूर्ण आत्म विश्वास के साथ कभी यहां तो कभी वहां चलते रहे, चलते रहे। कभी थके नहीं और असंख्य कार्यकर्ताओं एवं विद्वानों को लक्ष्य पूर्ति की अदम्य प्रेरणा देते रहे।[१६]

भाषाई दृष्टि से वे संस्कृत एवं हिन्दी की अनिवार्यता पर सर्वदा बल देते थे। उन्होंने लिखा है– **श्रावणी पूर्णिमा रक्षा बन्धन के दिन संस्कृत दिवस का आयोजन होता है।** यह आयोजन राष्ट्रमानस को राष्ट्र की निरन्तर प्रवाहमान संस्कृत भाषा की गौरवशाली परम्परा का स्मरण करवाता है। संस्कृत भाषा भारत की पहचान है। इसी से भारतवर्ष विश्वगुरु के पद पर प्रतिष्ठित रहा है।[१७] हमारी सभी भाषाएं, चाहे व तमिल हो या बंगला, मराठी हो या पंजाबी, हमारी राष्ट्र भाषाएं हैं। इन सभी के लिए प्रेरणा का स्रोत भाषाओं की रानी देववाणी संस्कृत है। संस्कृत हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए महान् संयोजक सूत्र है।[१८] अर्थात् उनका मत था कि देश को संस्कृत ही एक सूत्र में पिरो सकती थी। डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी को इस बात का मलाल रहता था कि 'शासन राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति संवेदनशील नहीं है।[१९] इस तरह हम कह सकते हैं कि डॉ. विद्याचन्द जी के सम्पादकीय अपने आप में महाकाव्य हैं जो हमें निरन्तर प्रेरित करते हैं।

संदर्भ :

१. सम्पादकीय, जय जय रघुवीर समर्थ, अप्रैल २००८
२. सम्पादकीय, अतीत कभी व्यतीत नहीं होता, जुलाई २००८
३. सम्पादकीय, अतीत कभी व्यतीत नहीं होता, जुलाई २००८
४. सम्पादकीय, लक्ष्य संधान का ही ध्यान, अक्तूबर २०१० - जनवरी, २०११
५. सम्पादकीय, जय जय रघुवीर समर्थ, अप्रैल २००८
६. सम्पादकीय, नव संवत्सर और राष्ट्रीय स्वाभिमान, अप्रैल २०११
७. सम्पादकीय, लोक मंगल की शुभ दृष्टि, अक्तूबर २००८
८. सम्पादकीय, धर्मों रक्षति रक्षितः, जनवरी २००६
९. सम्पादकीय, गीता में कर्मयोग, जनवरी २०१२
१०. सम्पादकीय, स्वस्ति भवते सगवे सवत्साय, जनवरी २०१०
११. सम्पादकीय, लोक मंगल की शुभ दृष्टि, अक्तूबर २००६
१२. सम्पादकीय, हिन्द स्वराज्य के १०० वर्ष, अक्तूबर २००६
१३. सम्पादकीय, भारत माता की जय, अक्तूबर २०११
१४. सम्पादकीय, कर्मठ ध्येय साधक, अक्तूबर २०१७
१५. सम्पादकीय, १०० वर्ष पहले का उत्तरपाड़ा भाषण, जुलाई २००६
१६. सम्पादकीय, लक्ष्य संधान का ही ध्यान, अक्तूबर २०१०-जनवरी २०११
१७. सम्पादकीय, संस्कृत दिवस और हिन्दी दिवस, जुलाई २०११
१८. सम्पादकीय, संस्कृतिः संस्कृताश्रिता, जुलाई २०१२
१९. सम्पादकीय, संस्कृत दिवस और हिन्दी दिवस, जुलाई २०११

सह-आचार्य - संस्कृत
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश

हस्तलिखित पत्र...✍

सेवा में

श्रीयुत विजय मोहन कुमार पुरी,
माननीय अध्यक्ष, ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, ज़िला: हमीरपुर (हि॰प्र॰)

विषय : हिमाचल प्रदेश के लोकजीवन में सनातन संस्कृति का प्रवाह -विषयक अध्ययन एवं अनुसंधान परियोजना।

मान्यवर महोदय,

निवेदन है कि मैं "हिमाचल प्रदेश के लोकजीवन में सनातन संस्कृति का प्रवाह" विषय पर अध्ययन एवं अनुसँधान कर रहा हूँ। यदि माननीय निदेशक मण्डल की स्वीकृति प्राप्त हो तो मैं यह कार्य परियोजना ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, नेरी के तत्त्वावधान में पूर्ण करने का इच्छुक हूँ। मैं यह परियोजना आश्विन मास, कलियुगाब्द ५११९ तदनुसार अक्तूबर, 2017 तक सम्पन्न करने का लक्ष्य रख कर प्रयासरत हूँ। अतः यह परियोजना विचारार्थ एवं अनुमोदन हेतु आपकी सेवा में संलग्न है।

सादर,

भवदीय,

(हस्ताक्षर)

(डॉ० विद्या चन्द ठाकुर)
निदेशक वैचारिक पक्ष, शोध संस्थान नेरी,
गाँव खोड़ा ओंगो, डाकघर -पीज
ज़िला - कुल्लू (हि॰प्र॰)-175101.

दिनांक:
पौष कृष्ण ११, कलियुगाब्द ५११८
२५ दिसम्बर, 2016

कविता ✍

म्हारे विद्वाना विद्याचन्दा

भूमि दत शर्मा

म्हारे विद्वाना विद्याचन्दा तेरी जै-जै काराओ
म्हारे विद्वाना विद्याचन्द तेरी जै-जै कराओ
खोड़ागे तै जन्म लिया
पौढ़या कुल्लू स्कूले
पैदल चलणे ते दुःखी नी होया
सांझा भ्यागा तू स्कला से नौठे
म्हारे विद्वाना विद्या चन्दा
बड्डा होई के बड्डी पढ़ाई
डाक्टरा री उपाधी पाई
चम्बे च वणया भाषा अधिकारी
मण्डीया वी रहया भाषा अधिकारी
म्हारे विद्वाना विद्याचन्दा तेरी जै-जै कराओ
इतिहास संकलन च कम करिया
फेरी जुडया शोध संस्थान नेरी
बडेयां-बडेयां ने गल्लां करीके
पोथियां लिखी वथेरी
म्हारे विद्वाना विद्याचन्दा तेरी जै-जै कराओ
नेरी ते तै सम्बन्ध जौडया
इतिहास दिवाकरा रा कम चढ़ाया
महीने-द्विमहीन री फेरी लगाणी
कम कौरेया बथेरा
म्हारे विद्वाना विद्याचन्दा तेरी जै-जै कराओ
तेरे जाणे रा दुःख सहया नी जान्दा
दुःखड़ा केई सुणाऊं
परमात्मा मेरी गोदी पायया।
होर क्या सुणाउं विद्वाना
म्हारे विद्वाना विद्याचन्दा तेरी जै-जै कराओ

कस्तारू ठाकरा विद्या चन्दा

पैरेन्द्रा

कस्तारू बोला ठाकरा विद्या चन्द महराजा (कौठी महाराजा)
रा मान बढ़ाऊ १-२
बाबै शेटू बोला हौछैं ने, आमै आगै बढ़ाऊ।
कस्तारू ठाकरा............।
शाबाश आमा लोतमी थे औउखी -सौंउखी पढ़ाऊ।
कस्तारू ठाकरा............।
सकीरथी लाई तै. आगै री मिहत (मेहनत)
सरकारा - दुआरा न नां पझाऊ।
कस्तारू ठाकरा............।
बिहूणी भान्नै नैंई मौउत मालका
पाथरी रा उंग बणाऊ।
कस्तारू ठाकरा..........।
जोंघे उंढिया नौण थी घौरा न
कौहूनै लोकै रै आऊ।
कस्तारू ठाकरा ....।
शांता लाड़ी लागी बोलदी, दुःखै कालजू ज़ालू।
कस्तारू ठाकरा...........।
किंया बिसरना सौ झूरी रा रौथडू मालका,
लाखा न एक थी तै बणाऊ।
कस्तारू ठाकरा ....।
माण्हूं शोभला गला बी निमती, भला-भला यै बल्याऊ।
कस्तारू ठाकरा............।
देश तहकी दुनियां , चिड़ू बी डाला रा रूआऊ।
कस्तारू ठाकरा ....

अनुराग पराशर

अज तेरिया तस्वीरा पर
            देखी कने हार
विद्या चन्द देखी कने हार
            दिल मेरा रोई जांदा
अखां भरी जांदी
            किसते तेरा पता पूछूं दस मेरे यार।
विद्या चन्दा दस मेरे यार.........।

हर बार लोहड़ी आऊर्णी
            हर बार जार्णी
बाजी तेरे जन्म दिना वाली लोहड़ी
            असां किसने मनाणी
दसी जा मेरे यार
            विद्या चन्दा दसी जा मेरे यार
अज तेरिया.........
तेरी लिखियां कताबां
            जाबी देखूं कदी मैं
विद्याचन्दा खोलूं कदी मैं
            तां अखर खोई जादें
अंजुआं ने धोई जांदे
            दसी जा कियां होई सकदा तेरा दीदार
विद्याचन्दा तेरा दीदार
            अज तेरिया..........।
याद तिजो करदे
            व्यासा रे कनारे
कुल्लू दशहरे रियां नाटियां
            पराशर झीला रे नजारे
तेरा कुल्लुवी टोपी
            पाई कने घूमणा कुल्लूये बजार
विद्याचन्दा कुल्लुये बजार
            अज तेरिया...........।

भारतीय मनीषा की पहचान

विश्व भर के विद्वान इस बात को मानते हैं कि भारत के संस्कृत वाङ्मय में ज्ञान-विज्ञान का विपुल भण्डार संरक्षित हैं। भारतीय जनमानस तो बड़ी सहजता के साथ इस तथ्य को स्वीकार करता है लेकिन जब तक कोई तथ्य सप्रमाण सामने न आए तो किसी भी बात की विश्वसनीयता डगमगाने लगती है और यदा-कदा तर्क के अभाव में भारतीय उदात मूल्यों एवं भारत के स्वर्णिम अतीत के प्रति आस्था के साथ जुड़ा मानव-मन भी सुनिश्चित नहीं हो पाता। जन-सामान्य को भारतीय मनीषा की प्रखर पहचान हो, हमारे संस्कृत ग्रन्थों में निहित ज्ञान-विज्ञान की धारा से राष्ट्र मानस परिचित हो, इसके लिए सहज बोधगम्य शैली में सामग्री का उपलब्ध होना आवश्यक है। निस्संदेह संस्कृत में विज्ञान विषयक पुस्तक के लेखक डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी ने इस अपेक्षा की पर्याप्त सीमा तक पूर्ति की है।

लेखक ने पुस्तक में वैदिक गणित, प्रौद्योगिकी ज्योतिष और खगोलशास्त्र, वनस्पति विज्ञान, प्रकृति विज्ञान, परमाणु विज्ञान, आयुर्विज्ञान, धातु विज्ञान, जन्तु विज्ञान, कृषि विज्ञान और पर्यावरण विज्ञान आदि विषयों का सारगर्भित प्रतिपादन किया है। वैदिक गणित की व्यापक चर्चा करते हुए ध्यान आकृष्ट किया गया है कि वैदिक काल के गणितज्ञों का विश्व को सबसे बड़ा योगदान गणना और उसकी संख्याओ का आविष्कार और दशमान एवं दशमलव पद्धति है। उन्होंने १० को गणना पद्धति का आधार बनाया और दशमान पद्धति में सबसे अधिक महत्वपूर्ण आविष्कार शून्य का किया। विज्ञान की विशेषतः संगणक क्षेत्र की जो प्रगति आज हो रही है, उसकी कल्पना शून्य के बिना नितान्त असंभव है। पुस्तक में वर्णित अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति तथा त्रिकोणमिति आदि विषयों के अनेक सिद्धान्तों की मूल संकल्पनाएं विश्व को भारत की देन रही है।

प्रौद्योगिकी विषय के अन्तर्गत लेखक ने हड़प्पा और मोहनजोदड़ों के पुरावशेषों के साक्ष्य में भारत के अतीत की समृद्ध प्रोद्यौगिकी का उल्लेख किया है। परमाणु विज्ञान में भारत के परमाणुवाद के सूक्ष्मतम स्वरूप की व्याख्या की गई है। ज्योतिष शास्त्र और खगोल विज्ञान में काल और भारतीय कालगणना के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। जिसमें काल की सूक्ष्मतम इकाई त्रुटि है और वार, पक्ष, मास, वर्ष, युग, महायुग, मन्वन्तर, कल्प, महाकल्प आदि इकाइयां क्रमशः काल के बृहद्तम स्वरूप का बोध करवाती है। विश्व की सबसे विशाल, प्राचीन और वैज्ञानिक कालगणना की व्यापकता का परिचय भारतीय परम्परा में किसी पूजा-अर्चना या मांगलिक अनुष्ठान के समय संकल्प मंत्र वाचन के विधान में पूर्णतया सुरक्षित है जो इस प्रकार है -

ॐ अद्य ब्रहणोऽह्नि द्वितीय परार्धे श्रीश्वेत - वाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथम चरण जम्बुद्वीपे भरतखण्डे आर्यवर्त प्रदेशे अमुक संवत्सरे अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरे अमुक क्षेत्रे....... एतद्कर्म करिष्ये।

इस संकल्प मन्त्र में स्मरण किया जाता है कि इस समय ब्रह्मा के इक्यावनवें वर्ष के प्रथम दिन के द्वितीय परार्ध के श्रीश्वेतवाराह कल्प में सातवें वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें कलियुग का प्रथम चरण चला हुआ है। इसके अनुसार वर्तमान विक्रमी संवत् २०५८ में कल्पाब्द का १,९७,२९,४९,१०३ सृष्ट्याब्द का १,९५,५८,८५,१०३ तथा कलियुबाब्द का ५१०३ वां वर्ष प्रचलित है।

वैदिक ग्रन्थों में प्राकृतिक नियम को ब्रह्माण्ड की वास्तविक नियन्त्रण शक्ति माना है। परवर्ती संस्कृत साहित्य में पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु आधारित पञ्चभौतिक सिद्धान्त के रूप में प्राकृतिक नियमों का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है जो कि प्रकृति विज्ञान की अद्धितीय ज्ञान प्रतिभा का परिचायक है। वनस्पति विज्ञान और आयुर्वेद विज्ञान में प्रमुख चिकित्सा आचार्य चरक और सुश्रुत की अतुल्य ज्ञानराशि का वर्णन है। आयुर्वेद में समग्र औषध द्रव्य समूह को पञ्चभूतों के आधार पर विभाजित किया गया है। जिसमें द्रव्य गुण सिद्धान्त, त्रिदोष सिद्धान्त और सप्त धातु सिद्धान्त की सांगोपांग व्याख्या हुई है।

वनस्पति विज्ञान में डॉ. गुलेरी पराशर ऋषि के वृक्षार्वेद ग्रन्थ का परिचय करवाते हैं। वे लिखते हैं कि इसमें वनस्पति विज्ञान का गंभीर ज्ञान निहित है जिसमें सपुष्प वनस्पतियों को विविध परिवारों में बांट कर इनकी उपयोगिता दर्शाई गई है। आयुर्वेद में शल्य चिकित्सा की भी जानकारी दी गई है कि सुश्रुत ने आठ तरह के शल्य कर्म बताए हैं। यथा-छेदन, मेदन, लेखन, वेधन, आहरण, विस्रावण और सीवन। शल्य क्रिया में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों में १०१ तरह के यन्त्र और २० तरह के 'शस्त्र' बताए गए हैं।

धातु विज्ञान की समृद्ध परम्परा को दर्शाते हुए लेखक ने दिल्ली के महरौली में स्थित चौथी शताब्दी के लौह स्तम्भ का उल्लेख किया है कि यह लौह स्तम्भ लोहकारों की अद्धितीय कार्यकुशलता का निदर्शन है जो १६०० सालों से वातारण की तरंगों से जुझने का भी बिना जंग के साफ खड़ा है। जन्तु विज्ञान में लेखक ने स्पष्ट किया है कि संस्कृत ग्रन्थों में जलचर, स्थलचर, नभचर, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज तथा शफ (खुर), द्विशफ और पंच अंगल (पंजाधारी) आदि सभी प्रकार के जन्तुओं का सम्पूर्ण परिचय उपलब्ध है।

पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए आज सम्पूर्ण विश्व चिन्तित है, परन्तु संस्कृत ग्रन्थों में वैदिक काल से ही पर्यावरण की स्वच्छता के महत्व का प्रतिपादन हुआ है। ऋग्वेद में स्वच्छ वायु सेवन की महत्ता निम्नलिखित मन्त्र में स्पष्ट है –

वात आ वातु भेषजं शुभु मयोधु नो हृदे।

प्राण आयंषि तारिषत् ।

अर्थात् वायु हमें ऐसी औषधियां प्रदान करे, जो हमारे शरीर के लिए शान्तिकर एवं आरोग्यकर हों, वायु हमारी आयु को बढ़ाए।

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। यहां प्राचीन काल से ही कृषि की वैज्ञानिक पद्धति का प्रचलन रहा है। लेखक ने पुस्तक के कृषि विज्ञान अध्याय में महर्षि पराशर द्वारा लिखित 'कृषि पराशर' पुस्तक का उल्लेख किया है। कृषि पराशर की कृषि सम्बन्धी अत्यन्त उपयोग जानकारियां इस पुस्तक में समाविष्ट की गई है। कृषि के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कृषि पराशर में लिखा है –

कृषिर्धान्या कृषिर्मेध्या जन्तूनां जीवनं कृषिः ।

अर्थात् कृषि सम्पति और मेधा (बुद्धि) प्रदान करती है और कृषि ही प्राणी जीवन का आधार है।

संस्कृत में विज्ञान पुस्तक के माध्यम से भारत की सूक्ष्मान्वेषी प्रतिभाओं एवं ज्ञान-विज्ञान की उस सनातन समृद्ध परम्परा का बोध होता है जिससे भारतवर्ष विश्वगुरु के परम सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित रहा है। पुस्तक पाठक के मन में विज्ञान की विविध धाराओं में अधिकाधिक गहरे उतरने की जिज्ञासा पैदा करती है। इस पुस्तक से एक बार फिर यह साबित हो जाता है कि भारतीय प्राच्य विद्याओं में आधुनिकता ज्ञान-विज्ञान के बीज निहित हैं। ऋषि-मुनियों ने आजीवन साधना और ज्ञान के अनेक क्षेत्रों में अपने समय पर जो आयाम जोड़े आज के संदर्भ में उनकी व्याख्या और पुनर्शोध अत्यन्त आवश्यक है। इसी दिशा में यह भी सिद्ध होता है कि प्राच्य ज्ञान-विज्ञान को हासिल करके उनकी सही व्याख्या व विवेचन के लिए संस्कृत भाषा का अध्ययन नितान्त जरूरी है। डॉ. गुलेरी ने आज के संदर्भ प्राच्य ज्ञान पर आधारित यह पुस्तक लिखी है। इसी से लेखक के सफल एवं गहन अध्ययन की पुष्टि होती है।

त्रिगर्त संबन्धी लोक साहित्य

भारतवर्ष के प्राचीन राज्यों में त्रिगर्त राज्य का गौरवशाली प्रतिष्ठित स्थान रहा है। इसी प्राचीन राज्य का एक प्रमुख खण्ड अवशेष कांगड़ा जनपद के रूप में आज भी हमारे सामने विद्यमान है। इस जनपद में लोक साहित्य की समृद्ध धारा अतीत से वर्तमान तक सतत् प्रवाहमान है जिसमें यहां की ऐतिहासिक परम्परा एवं लोक जीवन के समस्त आयाम प्रदीप्त होते हैं। लोक मन से उत्सित इन्हीं प्रदीप्त मौक्तिक मणियों को पिरोने का प्रयास प्रस्तुत आलेख में किया गया है।

प्रस्तुत आलेख को यदि त्रिगर्त का लोक साहित्य या कांगड़ा का लोक साहित्य शीर्षक दिया जाता तो सम्भवतः अधिक उपयुक्त प्रतीत होता। यहां यह स्पष्ट करना उचित होगा कि इस शीर्षक के अन्तर्गत लोक साहित्य एक ही सीमित हो जाता है। इस आलेख में लोक साहित्य के उन महत्त्वपूर्ण प्रखण्डों को प्राथमिकता के आधार पर संयोजित किया गया है जो कि इस भूभाग के सम्बन्ध में अन्य पड़ोसी क्षेत्रों में प्रकाशमान है। विशेषतः कुल्लू, चम्बा और मण्डी वे क्षेत्र है जिनका उल्लेख प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में कुलूत, ब्रह्मपुर और माण्डव्य नाम से हुआ है। इस क्षेत्रों में लोकमानस में व्याप्त त्रिगर्त या कांगड़ा राज्य से सम्बन्धित मान्यताओं एवं किम्बदन्तियों के अपेक्षणीय समावेश के कारण प्रस्तुत आलेख का शीर्षक 'त्रिगर्त सम्बन्धी लोक साहित्य' रखा गया है।

महाभारत, पुराण आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थों में त्रिगर्त राज्य का पर्याप्त वर्णन उपलब्ध है परन्तु लोक साहित्य में एक राज्य के लिए त्रिगर्त शब्द का प्रयोग अनुपलब्ध है। त्रिगर्त के लिए लोक साहित्य में कांगड़ा का नगरकोट शब्द ही प्रयुक्त हुआ है तथा कुछ प्रसंगों में जालन्धर शब्द की भी अभिव्यक्ति मिलती है। संभवतः त्रिगर्त राज्य के विशाल क्षेत्र के अन्तर्गत नगरकोट-कांगड़ा का भूभाग एक जनपदीय ईकाई के रूप में सम्मिलित था। वहां के लोगों में जनपदीय अन्तरंगता के सहज प्रभाव से इसी इकाई का नाम व्यवहार प्रसिद्ध होकर स्थाई बन गया तथा इसके साथ ही स्थान सामीप्य एवं जालन्धर पीठ के धार्मिक माहात्म्य के फलस्वरूप जालन्धर शब्द का प्रयोग भी लोकमानस में प्रचलित रहा।

कांगड़ा जिला की धौलाधार नाम की उन्नत पर्वत श्रृंखला के दूसरी ओर हिमाचल प्रदेश का जिला चम्बा बसा है। चम्बा के लोग बहुधा कांगड़ा भू-भाग के लिए जान्धर शब्द का प्रयोग करते हैं। चम्बा जिला का भरमौर क्षेत्र गद्दी जनजाति की निवास भूमि है। भरमौर के प्राचीन काल में 'ब्रह्मपुर' कहा जाता है और गद्दियों की निवास भूमि होने से इसे गब्दिका भी कहते थे। इसका उल्लेख पाणिनी

की अष्टाध्यायी में हुआ है। आजकल भी गद्दियों में सम्बन्ध होने के कारण भरमौर को गद्देरण भी कहा जाता है। गद्देरण में सर्दी के दिनों में भारी हिमपात होता है और उन दिनों वहां जीवन बसर करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इसलिए जब गद्देरण में ठण्ड बढ़नी शुरू होती है तो गद्दी लोग वहां से आकर कांगड़ा घाटी में प्रवास करते हैं तथा सर्दियों समाप्त होने पर चैत्र मास में वापिस गद्देरण लौटते हैं। गद्देरण पहाड़ों को छोड़, कांगड़ा में जाकर जीवनयापन करने की इस स्थापित जीवन शैली का एक लोकगीत में बड़ा भाव-प्रवण वर्णन किया गया है –

धारा लगा सीणा मेरे गद्दिआ,
धारा लगा सीणा ओ।
जान्धर जाई जीणा मेरे गद्दिया,
जान्धर जाई जीणा ओ।

इस गीत में गद्दिन अपने गद्दी से अनुरोध कर रही है कि हे मेरे गद्दी! अब पहाड़ों पर ठण्ड बढ़ रही है। इसलिए अब चलें! जान्धर अर्थात् कांगड़ा घाटी में जाकर यापन करते हैं।

यहां कांगड़ा के लिए प्रयुक्त जान्धर शब्द 'जालन्धर' का ही परिवर्तित रूप है। जिस में उच्चारण सौकर्य से 'ल' वर्ण का लोप हो गया है। पुस्तकों में इस क्षेत्र का जालन्धर, जालन्धर पीठ तथा जालन्धरायण के नाम से उल्लेख हुआ है।

किसी समय इस क्षेत्र में जालन्धर नामक दैत्य का साम्राज्य था। इसके अत्याचारी शासन का अन्त करने के लिए देवी देवताओं का इसके साथ घोर संग्राम हुआ। कहते हैं कि जालन्धर दैत्य से युद्ध करते हुए भगवती ब्रजेश्वरी के शरीर पर अनेक चोटें आईं। इन चोटों को ठीक करने के लिए देवी-देवताओं ने इनके शरीर पर मक्खन का लेप किया। इस घटना की स्मृति में आज भी बज्रेश्वरी देवी मन्दिर में घृत मण्डल का अनुष्ठान किया जाता है। इस अनुष्ठान में मकर-संक्रान्ति को भारी मात्रा में एकत्र मक्खन कुंए में शीतल जल से सौ एक बार धोकर, उसमें फल, मेवे मिश्रित करके भगवती की पिण्डी पर चढ़ाया जाता है। सातवें दिन घृत-मण्डल को हटाने की प्रक्रिया की जाती है। उस समय लोक घृत-मण्डल के मक्खन के अंश को अपने घर ले जाते हैं और घर में सम्भाल कर रखते हैं। लोक प्रमाण है कि गठिया आदि जोड़ों के दर्द इस मक्खन के मालिश से ठीक हो जाते हैं। दन्त कथा में कहा जाता है कि अन्ततः जालन्धर दैत्य मारा गया। जब वह धाराशयी हुआ तो उसके मृत शरीर ने बहुत बड़ा क्षेत्र घेर लिया। लोक प्रचलित मत के अनुसार इस दैत्य का मुख ज्वालामुखी, कान कांगड़ा दुर्ग, पीठ जालन्धर शहर और पांव मुलतान में दबे पड़ें हैं। इस लोक मत वस्तुतः ताल्कालीन जालन्धर राज्य की विस्तृत सीमाओं को संकेत करता है।

त्रिगर्त राज्य की वंशावली के अनुसार इस राज्य का प्रथम राजा भूमिचन्द्र था। लोक वार्ता में राजा भूमिचन्द्र के जन्म के संबन्ध में बतलाया जाता है कि इस क्षेत्र के दैत्यों ने ब्रह्मा जी से वरदान प्राप्त किया था कि उन्हें देवताओं के हाथों न मारा जा सके। यह वरदान पाकर दैत्य बड़े उपद्रवी हो गए

और देवताओं को इन से छुटाकरा पाना कठिन हो गया। वे दुर्गा भवानी माता वज्रेश्वरी की शरण में गए। जब माता वज्रेश्वरी के साथ दैत्य का नाश करने की रणनीति पर विचार-विमर्श हो रहा था, उस समय आकाशवाणी हुई कि इन दैत्यों का देवी-देवता नहीं अपितु कोई तेजस्वी मानव विनाश कर सकता है। आकाशवाणी सुनते ही माता वज्रेश्वरी क्रोध से तमतमा उठी। उनका शरीर पसीने से तर-बतर हो गया। माता ने अपना पसीना पोंछ कर धरती पर फैंका। उन पसीनों की बूंदों से अकस्मात् भूमि में से एक वीर पुरुष हाथ में ढाल तलवार लेकर पैदा हुआ। माता भवानी ने कहा - 'वत्स तुम दैत्यों से युद्ध करो और अपनी वीरता से दैत्यों का नाश करके अपने राज्य की स्थापना करो।' माता भवानी का आदेश पाकर इस वीर पुरुष ने यहां से दैत्यों का सफाया किया और अपने राज्य की स्थापना की।

धरती मां की कोख से पैदा हुए राजा भूमिचन्द्र में वैदिक मन्त्रों की यह गौरव भावना सम्पुष्ट थी कि भूमि मेरी माता है और मैं इस मातृभूमि का पुत्र हूं - 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।' राजा भूमिचन्द्र के पश्चात् इन्हीं के वंशज लगभग ५०० पीढ़ियों तक त्रिगर्त अथवा कांगड़ा राज्य पर शासन करते रहे। इतने लम्बे समय तक एक ही वंश के शासन की यह अटूट शृंखला इसीलिए बनी रही कि यहां के राजाओं में अपने राजवंश के प्रथम पुरुष के आदर्श संस्कारों का आचरण करते हुए अपने राज्य एवं मातृभूमि की सेवा पुज्य भाव से करने का संकल्प सदैव बना रहा।

नगरकोट की वज्रेश्वरी देवी के सम्बन्ध में कुलूत के निरमण्ड क्षेत्र के लोगों में यह किम्वदन्ति प्रचलित है कि एक बार नगरकोट में भगवती वज्रेश्वरी की उपेक्षा होने लगी तो यह देवी कुपित होकर निरमण्ड में देवी अम्बिका के पास जा पहुंची। निरमण्ड की अम्बिका माता के चेले के मुख से जब निरमण्डवासियों को इसका पता चला तो कुछ दिनों तक देवी अम्बिका के साथ यहां नगरकोट की देवी की पूजा भी की जाती थी। नगरकोट में भी पुजारियों को ज्ञात हुआ कि भगवती की शक्ति कला यहां नहीं है तो इसके बारे में खोजबीन चली। इन्हें पता चला के देवी नगरकोट से कुपित होकर निरमण्ड चली गई हैं तो वे निरमण्ड पहुंचे और वहां से देवी को मनवाकर नगरकोट वापस ले आए। यह लोक वार्ता देवी-देवताओं का इस धरती पर रूठना, मनाना आदि मानवी लीला करने का उदाहरण है। इस कथा में आस्तिक लोगों के लिए एक चेतावनी भी है कि यदि वे अपनी धर्म मर्यादा की अनुपालना न करें तो उन्हें देवी देवताओं की कृपा से वंचित भी होना पड़ सकता है।

लोक साहित्य में कांगड़ा के एक सदाचारी राजा बाणवट की कथा का बहुत प्रचलन है। कुल्लू में राजा बाणवट के अनुकरणीय चरित्र का गुणगान करते हुए यह कथा सुनाई जाती है कि पुराने समय में नगरकोट कांगड़ा में धर्म का एक बड़ा सच्चा-पक्का राजा राज्य करता था। एक दिन उस राजा के पास एक साधु आया। साधु ने राजा से कहा कि उसे श्रद्धा के अनुसार कुछ भेंट अर्पित करो। राजा ने राजकोष से पैसे मंगवाए और उन्हें साधु को देने लगे। साधु ने उन पैसों को लेने से इन्कार कर दिया

और कहा कि मुझे ये जनता से इकट्ठे किए हुए पैसे नहीं चाहिए। ये जनता के पैसे तो जनता की भलाई में ही लगने चाहिए। आपकी चर्चा एक धर्मात्मा राजा के रूप में बहुत सुनी है लेकिन एक धर्मात्मा राजा से मैं यह आशा नहीं रखता कि आप जनता की कमाई साधु को दे दें। मैं तो आपसे उस भेंट की आशा रखता हूं जो कि आपके हाथ की मेहनत की कमाई हो। साधु के वचनों ने राजा के अन्तर्मन को झिंझोड़ कर रख दिया। राजा ने साधु के चरणों में प्रणाम किया और कहा - 'बाबा आपने मुझे सच्ची धर्मदृष्टि प्रदान की है। मैं इसी धर्मपथ का अनुसरण करूंगा। इस समय आप मुझे क्षमा करें। आप कुछ दिनों के बाद आएं तो मैं अपनी हाथ की कमाई से ही आप को कुछ भेंट कर सकूंगा।' राजा की बात सुनकर साधु अपनी अगली राह पर निकल गया।

राजा ने अपने लिए नियमित कार्य का चयन करते हुए चारपाई में प्रयुक्त होने वाली रस्सियां, जिन्हें 'बाण' कहते हैं, को बनाने का निश्चय किया और बिहूल वृक्ष की कटी टहनियों के निकाले रेशे से बाण बटनें का काम शुरू कर दिया। बाण की रस्सियों के विक्रय से राजा की कमाई होने लगी। पति का अनुगमन करते हुए रानी भी कर्म-त्तपर हो कर ऊन कातने का काम करने लगी। राजा-रानी दोनों ही अब अपने हाथ की कमाई से जीवन निर्वाह करने लगे। इससे उन्हें अद्भुत मानसिक शान्ति की उपलब्धि हुई और उनके जीवन में सच्चे कर्मयोगी के गुण साक्षात् हो गए।

कुछ दिनों के बाद वह साधु राजमहल में पुनः आ पहुंचा। राजा-रानी ने साधु की भक्ति-भाव से सेवा की और अपनी नेक कमाई में से साधु के चरणों में अर्पित की। साधु ने उनका कर्म-वृत्तान्त सुना और प्रसन्नचित हो कर भेंट स्वीकार करते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया कि कर्म पूजा के अध्यात्म बल पर आप मन में जिस काम की भी इच्छा करोगे, उस काम की पूर्ण सफलता निश्चित रहेगी। आप अपनी जीवन निर्वाह बाण बांटने के काम से कर रहे हो, इसलिए लोक में आपकी प्रसिद्धि राजा बाणभट के नाम से होगी। आपके अजेय राज्य की कीर्ति दूर-दूर तक फैलेगी और यह कीर्ति तब तक अखण्ड बनी रहेगी जब तक कि आप लोभ लालच से बच कर सत्यधर्म के मार्ग पर अडिग रहेंगे। साधु आशीर्वाद देकर राजमहल से विदा हो गए और उसके बाद राजा धर्म रीति से राजकाल चलाने लगे।

राजा बाणभट के सदाचार और उनके समृद्ध राज्य की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी। उनकी कीर्ति गाथा महाचीन के राजा तक भी जा पहुंचा। महाचीन के राजा ने अपने सैनिकों का एक दल साधारण वेशभूषा में इस राज्य के चर्चित अध्यात्मबल का पता लगाने के लिए नगरकोट कांगड़ा भेजा। नगरकोट पहुंच कर ये सैनिक राजा बाणभट से मिले। राजा ने उनकी आवभगत की और यहां पधारने का प्रयोजन जानना चाहा। सैन्य दल के प्रमुख ने कहा कि आप का धर्म मर्यादा और समृद्ध राजकाल की बहुत चर्चा सुनी है। आप के राज्य में कमी हमें इस बात की लग रही है कि आप के पास सेना का प्रबन्ध नहीं है। इस स्थिति में यदि कोई दूसरा राज्य आपके राज्य पर आक्रमण कर दें तो आप अपना राज्य कैसे सुरक्षित रख पाएंगे? बाणभट ने कहा - 'हम किसी से शत्रुभाव नहीं रखते, इसलिए कोई हम

पर अकारण आक्रमण क्यों करेगा?' महाचीन के सैन्य दल का प्रमुख कहने लगा 'महाराज! मान लो यदि आक्रमण हो ही जाता है, तब आप अपना बचाव कैसे करेंगे?' राजा ने स्पष्ट किया - 'यदि बिना कारण आक्रमण हो जाता है तो परिणाम निश्चित है, जहां धर्म होगा वहां जय होगी और जहां पाप होगा वहां क्षय होगी।' इस कथन के बाद सैनिक प्रमुख कहने लगा - 'राजा साहिब! इस समय आप हमारी कैद में हैं। हम आपका राज्य हड़प लेंगे। आप अपना बचाव कर लें।' राजा ने यह सुन कर कुछ देर ध्यान लगाया और फिर कहा कि तुम मेरे राज्य को हड़पने से पहले महाचीन में पता कर लो कि मैंने अभी-अभी अपनी इच्छा शक्ति के बाण से तुम्हारे राज्य का शस्त्र-भण्डार नष्ट कर दिया है। राजा की बात पर सैनिक दल लौट कर महाचीन पहुंचा। वहां पता चला कि उसी तिथि को और राजा द्वारा बताए गए समय पर ही महाचीन का शस्त्र-भण्डार एक चमत्कारी धमाके साथ नष्ट हो गया था। सैनिकों से पूरी जानकारी प्राप्त कर महाचीन के राजा ने राजा बाणभट की सदाचारपूर्ण अध्यात्मशक्ति को स्वीकार किया और उन्होंने स्वयं भी युद्धनीति का मार्ग त्यागकर धर्मनिष्ठ राजनीति का मार्ग अपनाया।

राजा बाणभट की रानी का कर्मशील परोपकारी जीवन भी अलौकिक सिद्धि सम्पन्न बन गया था। नगरकोट राजा के महल के साथ ही एक नदी बहती थी। रानी महल में ऊन कातने का काम में लीन रहती थी और जब उसे पानी की आवश्यकता होती थी तो वह ऊन के आले धागे (कच्चे धागे) से घड़ा बांध कर महल के छज्जे पर से उसे नदी में फैंकती थी और पानी से भरा घड़ा महल में खींच लाती थी। ऐसी अलौकिक सिद्धि से रानी के भीतर कुछ अहंकार के बीज अंकुरित होने लगे। ऐसी स्थिति में भाग्य करवट लेने लगा।

भाग्य ने नया खेल खेलना शुरू कर दिया। एक दिन राजा और रानी दोनों एक मेले में शामिल हुए। वहां एक साहूकार की पत्नी के गले में रानी ने नौलक्खा मोतियों का हार देखा। रानी का मन हार की ओर आकृष्ट हो गया। महल में पहुंच कर रानी ने राजा से कहा कि वह उसे नौलक्खा हार बनाएं। राजा ने उसे समझाया कि हमारे पास इतना पैसा कहां है? जिससे मैं आपको यह हार बनवा सकूं। रानी ने उलाहना दिया कि तब तुम किस बात के राजा और मैं किस बात की रानी? प्रजा की अन्य स्त्रियों का हार-शृंगार तुम्हारी रानी से बढ़कर हो, यह बात हमें शोभा नहीं देती। राजा ने रानी के समझाने के बहुतेरे प्रयत्न किए लेकिन आखिर में वह रानी के हठ के आगे लाचार हो गया। राजा ने प्रजा पर अतिरिक्त कर लगाकर पैसा इकट्ठा किया और नौलक्खा हार बना कर उसे रानी के सुपुर्द कर दिया। हार पहनकर रानी फूली नहीं समाई। अनेकों सखी-सहेलियां रानी का हार देखने महल में पहुंची। रानी के पास उल्लास का महौल था। इस बीच किसी ने पानी मांगा। घड़े में पानी देखा तो घड़ा खाली था। रानी ने पानी के लिए कच्चे धागे से बांधा और नदी में फैंका। घड़ा टकरा कर फूट गया। सब हतप्रभ हो गए। रानी परेशान हो गई। यह बात राजा तक पहुंची। राजा ने कहा कि यह तो होना

ही था। रानी जो कच्चा धागा बांधती थी, उसमें धर्म का बल होता था। जब धर्म की डोर लोभ-लालच से अनाचार में उलझ जाती है तो अलौकिक सिद्धियों का विनाश हो जाता है। अब तो रानी को अपने किए पर बड़ा पश्चाताप हुआ लेकिन अब पहले वाली स्थिति स्थापित नहीं हो सकी। नगरकोट की धर्म शक्ति का ह्रास हुआ और उसके बाद यह राज्य भी अन्य राज्यों की भान्ति राग-द्वेष के अनेकों उलझनों में उलझ गया। यह लोक कथा जहां नगरकोट राज्य की शान्ति, समृद्धि और राजा बाणभट के अनूठे उदात्त चरित्र को व्याख्यायित करती है, वहां इसमें सदाचारी जीवन मूल्यों की प्रेरणा भी निहित है।

यह एक प्रमाणिक ऐतिहासिक तथ्य है कि वर्तमान ज़िला हमीरपुर का नादौन नगर कांगड़ा राज्य की राज सत्ता का प्रमुख केन्द्र रहा है। किसी काल में नादौन में भी एक दैवीय गुण सम्पन्न राजा हुआ है जो कि मृत्यु के पश्चात् ज़िला शिमला के रोहडू कोटखाई क्षेत्र में देवता वौइन्द्र के रूप में अवतरित हुए। इस क्षेत्र में देवता वौइन्द्रा की लोक गाथा प्रचलित है जिसमें नादौन राजा की देवत्व प्राप्ति और उनकी केदारनाथ यात्रा का वृत्तान्त वर्णित है। लोक गाथा के आरम्भ में गाया जाता है कि हम सब मिलकर देवत्व को प्राप्त नादौण राजा की मूल गाथा गाते हैं। सब लोग कान लगा कर सुनें, हम देवता वौइन्द्रा की गाथा गाते हैं –

मुलै मलाइयै जाणी केरी मलाई।
देव देउला राजा नादौणो वारौ दे गाई।।
सभी सुणौ लोगुऔ तुऐ कानड़ू लाई।
देव गोआ वौइन्द्रा वारौ दे गाई।।

केदारनाथ यात्रा का वर्णन करते हुए गाया जाता है कि पहले तो केदार यात्रा की सभी रस्में पूरी करके देवता वौइन्द्रा की गाथा का गान होता है और हम नादौण के राजा की यह कीर्ति गाथा बाजे-गाजे के धूम-धड़ाके के साथ गा रहे हैं –

पोलकै कदारौ री देवा रसीमा पाई।
देव हेरा वौइन्द्रा वारौ दे गाई।।
मोरै तो गाणा अमी नादौणो रा राजा।
धौड़ धड़ लागा देवा भूइजै बाज़ा।।

यह गाथा जहां त्रिगर्त भूमि की माटी के सात्त्विक गुणों को प्रतिबिम्बित करती है वहां यह मानव समुदाय को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है जिससे उसकी कीर्ति गाथा कालजयी बन कर दूर-दूर तक प्रसृत हो।

कांगड़ा जिला का एक दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र है – भंगाहल। भंगाहल में महाभारत काल में राजा 'रत्नजच्छ' का राज्य था। 'जच्छ' शब्द' यक्ष शब्द का परिवर्तित रूप माना जाता है। अतः पढ़े लिखे लोग रत्नजच्छ को रत्नयक्ष भी कहते हैं। राजा रत्नजच्छ ज़िला मण्डी में देवता कमरूनाग के रूप में पूजित हैं जिसका मुख्य स्थान ६००० फीट की ऊंचाई पर कामरूनाग झील हे। जहां देवता कामरूनाग को समर्पित एक झील और झील के किनारे देवता का मन्दिर और मन्दिर के भीतर प्रस्तर मूर्ति है।

इनके बारे में लोक कथा इस प्रकार बतलाई जाती है कि भंगाहल का राजा रत्नजच्छ महाभारत युद्ध में शामिल होने के लिए जा रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण रत्नजच्छ की वीरता से परिचित थे। उन्होंने सोचा कि यदि रत्नजच्छ कौरव सेना में शामिल हुआ तो पाण्डवों को युद्ध जीतना कठिन हो जाएगा। अतः वे न्याय की जीत के लिए युद्ध नीति के अन्तर्गत ग्वाला का भेष धारण कर के रत्नजच्छ के मार्ग में बैठ गए। रत्नजच्छ जब उसके पास पहुंचे तो उन्होंने प्रश्न किया कि राजा तुम कहां जा रहे हो। राजा ने बतलाया कि वह महाभारत के युद्ध में लड़ने जा रहा है।

''तुम वहां किसका पक्ष लोगे?'' ग्वाले ने प्रश्न किया।

उत्तर में रत्नजच्छ ने कहा – ''जो पक्ष हार रहा होगा। मैं उसी ओर से लड़ूंगा।''

''क्या तुम हारने वाले को जीत दिला सकोगे?'' ग्वाले के प्रश्न पर रत्नजच्छ ने उत्तर दिया- ''अवश्य''

श्रीकृष्ण ने इसका प्रमाण देने के लिए कि यदि तुम एक ही बाण से पास में खड़े पीपल वृक्ष के सभी पत्ते बांध लोगे तो सत्य ही तुम हारने वाले पक्ष की हार को जीत में बदल सकोगे। नहीं तो आपकी बात हवा में ही रह जाएगी। रत्नजच्छ ने इस बात की प्रमाणित करने की बात मान ली और एक बाण में उस प्रतापी राजा ने वृक्ष के सारे पत्ते बींध दिए। पांच पत्ते श्रीकृष्ण ने अपने पांव के नीचे दबा रखे थे। रत्नजच्छ बोले ''पतों के ऊपर से पांव हटा दो, वरना तुम्हारा पांव भी बींध जाएगा। श्री कृष्ण ने पांव हटाया और पीपल वृक्ष के पत्ते भी बींध गए। श्रीकृष्णण समझ गए कि रत्नजच्छ के युद्ध के मैदान में उतर आने से दुष्ट प्रवृत्ति के पक्ष की जीत से पृथ्वी मर्यादाहीन हो जाएगी। इसलिए अब जैसे ही रत्नजच्छ घोड़े पर सवार हो कर आगे बढ़ा तो श्रीकृष्ण ने कहा कि महाराज! तुम मुझे एक चीज दोगे? रत्नजच्छ ने कहा – 'जल्दी बोलो! क्या चाहते हो? कृष्ण बोले – 'पहले वचन दो, तुम मुझे मुंह मांगी चीज़ अवश्य दोगे।' रत्नजच्छ ने वचन दे दिया।

महाराज! मुझे तुम्हारा सिर चाहिए, 'श्रीकृष्ण ने कहा।

यह मांग सुनकर रत्नजच्छ जान गए कि यह सब श्रीकृष्ण का खेल था। लेकिन, वह धर्मशील वीर राजा वचनबद्ध था। उसने सिर देना स्वीकर किया पर, साथ में श्रीकृष्ण से इच्छा व्यक्त की कि वह महाभारत का युद्ध देखना चाहता है। इसलिए उसके सिर को जीवन दान प्रदान करवाएं जिससे वह महाभारत का युद्ध देख सके। श्रीकृष्ण ने यह बात स्वीकार कर ली। रत्नजच्छ ने अपना सिर काटकर श्रीकृष्ण को भेंट किया और श्रीकृष्ण ने उसमें जीवन शक्ति सुस्थिर कर उसे एक ऊंचे स्थान पर रखवाया। जहां से रत्नजच्छ ने पूरे महाभारत युद्ध का दर्शन किया। युद्ध समाप्ति के बाद जब पाण्डवों ने रत्नजच्छ से पूछा कि महाभारत युद्ध में विशेष बातें तुमने क्या-क्या देखीं? तो रत्नजच्छ ने बताया कि उन्हें सर्वत्र दो ही चीजें दिख रही थी – 'एक श्रीकृष्ण का चक्र और दूसरा काली का खप्पर।' दूसरे योद्धा तो बहाना मात्र थे। श्रीकृष्ण का चक्र कौरव सेना का नाश कर रहा था और पृथ्वी को लहू लूहान

होने से बचाने के लिए काली का खप्पर धराशयी योद्धाओं के लहू का शमन कर रहा था।

युद्ध के उपरान्त रत्नजच्छ की इच्छा के अनुसार उसकी कमरूनाग झील के स्थान पर देवता के रूप में प्रतिष्ठापना की। लोग आज भी इन्हें पाण्डवों द्वारा पूजित देवता के कारण 'पाण्डवों का ठाकुर' भी कहते हैं। इन्हें लोग भंगाहल के राजा के रूप में भी स्मरण करते हैं। कांगड़ा के भंगाहल क्षेत्र के एक प्रखण्ड बीड़ भंगाहल में एक छोटा सा दुर्ग है जिस रत्नगढ़ कहा जाता है। रत्नगढ़ के साथ रत्नजच्छ का सम्बन्ध सहज प्रतीत होता है और इससे मण्डी में प्रचलित उक्त लोक कथा को पर्याप्त पुष्टि मिलती है।

महाभारत के कथा प्रसंग में बर्बरीक नामक एक यौद्धा का वर्णन आता है। बर्बरीक को मारने का कथानक पर्याप्त अंशों में रत्नजच्छ की लोक कथा से मेल खाता है और कुछ लोगों की धारणा है कि बर्बरीक ही रत्नजच्छ है। बर्बरीक भीमपुत्र घटोत्कच का पुत्र था। जिसका जन्म प्रागज्योतिषुर असम में वहां के मुर दैत्य की पुत्री कामकंटकटा की कोख से हुआ था। असम का प्राचीन नाम कामरूप भी है। मण्डी में रत्नजच्छ को कमरूनाग के रूप में पूजा जाता है। कामरूप और कमरू शब्द में अत्याधिक साम्यता है। यह एक विचारणीय विषय है कि प्राचीन समय में भी नेपाल और असम तक पूरे हिमालय क्षेत्र में निकटस्थ सामंजस्य रहा है और यहां के वीर शासकों का दूरस्थ स्थानों तक व्यापक प्रभाव रहता था। संभवतः बर्बरीक कामरूप असम में पैदा होकर बड़ा होने पर भंगाहल क्षेत्र में आकर शासक बना हो और यहां इनका नाम रत्नजच्छ पड़ा हो। भंगाहल विशाल त्रिगर्त संघ की एक इकाई रही होगी। त्रिगर्त का राजा सुशर्मचन्द्र तो महाभारत में कौरव-पक्ष का महत्वपूर्ण वीर योद्धा था ही और रत्नजच्छ का भी स्वाभाविक झुकाव उसी पक्ष की ओर होने के कारण न्याय-पक्ष की जीत को सुनिश्चित बनाने की दृष्टि से श्रीकृष्ण को इनका वध करना पड़ा।

त्रिगर्त के निवासी अपनी शूरवीरता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। पाणिनी अष्टाध्यायी में त्रिगर्तवासियों को आयुधजीवी कहा गया है। आज भी कांगड़ा की धरती के हजारों सैनिक भारतीय सेना में अपनी सेवाएं समर्पित करके आयुधजीवी वीर योद्धाओं की पहचान को प्रमाणित कर रहे हैं। हालांकि मुगल शासन काल में एक समय ऐसा भी आया जब अहमदशाह दुर्रानी की लूटपाट से यहां की जनता में असुरक्षा का भय इतना अधिक फैल गया कि इस क्षेत्र में एक कहावत प्रसिद्ध हो गई —

खादा पीता लाहे दा,
बाकी अहमद शाहे दा।

अर्थात् जो खा-पी लिया, वही अपना है। बाकी का क्या भरोसा? कब अहमद शाह सरीखे लोग लूट कर ले जाएं। लेकिन अनेक विकट परिस्थितियों से जूझते हुए भी कांगड़ा के रणबांकुरों ने 'वीर भोग्या वसुन्धरा' की संकल्प शक्ति के साथ मातृभूमि की सेवा में जीवन न्यौछावर किया है। उन रणबांकुरों की वीर गाथाएं कांगड़ा की लोक गाथाओं में गुम्फित है। वीर गाथाओं को स्थानीय बोली में 'वार' कहते हैं। उदाहरणतया कांगड़ा में वज़ीर रामसिंह पठानिया की वार बहुत प्रसिद्ध है। राम सिंह

पठानियां नूरपुर के बज़ीर शाम सिंह पठानिया का बेटा था। शामसिंह के वृद्ध होने पर १८४६ में रामसिंह को वजीर बनाया गया। उसी काल में कांगड़ा की पहाड़ी रियासतों पर अंग्रेजी शासन का कब्जा हो गया था और उन्हीं दिनों नूरपुर के राजा वीरसिंह का भी देहान्त हो गया। वीरसिंह का बेटा जसवन्तसिंह राजा बना, जो आयु में बहुत छोटा था। इसलिए राजकार्य का पूरा दायित्व रामसिंह पठानिया ने पूरी ईमानदारी के साथ सम्भाला। उन्हें अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार नहीं थी वे अंग्रेजों के विरुद्ध सक्रिय हो गए। उन्होंने राज्य में छापामार गुरिल्ला सेना तैयार की। कुछ पड़ोसी राजाओं से सहयोग प्राप्त किया और सन् १७४८ में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में कूद पड़े। शाहपुर कंडी, ढल्ले की धार, बौड़, माओकोट आदि स्थानों में पठानिया सेना ने अंग्रेजी सेना को बुरी तरह परास्त किया। उस समय के कागड़ा के जिला अधिकारी वार्नस ने रामसिंह पठानियां को कुचलने के लिए सेना और लोगों को कई पुरस्कारों के प्रलोभन दिए परन्तु मातृभूमि के सपूतों ने उसकी सारी योजनाएं विफल कर दीं। इसी बीच एक कुपूत ने अंग्रेजों को पठानियां की दिनचर्या से अवगत करवाया और एक दिन जब वे पूजा में बैठे थे, उस समय वे अंग्रेजी सेना के सैनिकों के हाथ में आ गए। अन्त में वे रंगून जेल भेज दिए गए। सन् १८४६ में रंगून जेल में ही वीरगति को प्राप्त हुए। भारत में स्वतन्त्रता के १८५७ के संघर्ष ने अंग्रेजी शासन सत्ता को हिला दिया था लेकिन यहां इससे भी ६ वर्ष पहले १८४८ में ही अंग्रेजी सरकार को रामसिंह पठानिया से जबरदस्त चुनौती मिली थी। वजीर राम सिंह पठानिया हिमाचल प्रदेश के प्रथम स्वतन्त्रता सेनानी हैं। उनका नाम राष्ट्रभक्त क्रान्तिवीरों की शीर्ष पंक्ति में सम्मिलित है। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के एक प्रकल्प के अन्तर्गत नूरपुर में इतिहास पुरुष रामसिंह पठानिया स्मारक परिसर का निर्माण हो रहा है। यह इस क्रान्तिवीर के प्रति राष्ट्र की सच्ची श्रद्धांजलि है जिनकी प्रेरणास्पद स्मृतियां लोकमानस ने लोकगाथाओं में संजोई हुई है। एक ही मूल कथावस्तु को अभिव्यक्ति देने वाली कुछ भिन्न-भिन्न रूपों में प्रचलित वजीर रामसिंह पठानियां की 'वीरता' शीर्य का संजीव भाव जागृत करती है। हां इस लोकगाथा 'वीरता' के कुछ पंद्याश प्रस्तुत हैं –

घर शमसिंह दे रामसिंह जम्मिया,
जम्मियां कोई अवतार राजा,
जम्मियां कोई बलकार राजा,
जिन्नी जमदियां लई तलवार राजा,
कोई ऐसा पठानिया खूब लड़या,
बेटा वजीर दा खूब लड़या।
लिखी परवाणा कम्पनी भेजदी,
तू गोरयां नाल न छेड़ राजा,
फरंगी बुरी बला राजा,
तैकी रखगे पिंजरे पा राजा,
घर-बार करन तबाह राजा,
कोई ऐसा पठानिया खूब लड़या,

बेटा बजीर दा खूब लड़या।
लिख परवाना रामसिंह भेजदा,
असीं लड़ना फरंगियां नाल राजा,
मारी कढणे फरंगी बाहर राजा,
असीं जीणा ध्याड़ी चारा राजा,
असीं रखणी कुल दी लाज राजा,
कोई ऐसा पठानिया खूब लड़या,
बेटा बजीर दा खूब लड़या,
बेटा बजीर दा खूब लड़या।
लिख परवाना रामसिंह भेजदा,
मैं लड़ना गोरयां नाल राजा,
खाए मरोड़ा रामसिंह चढ़या,
हत्थ चण्डी लस-लस तलवार राजा,
जेहड़ी करदी है मारोमार राजा,
कटी मारै फरंगी सरदार राजा,
कोई ऐसा पठानिया खूब लड़या,
बेटा बजीर दा खूब लड़या।
इक बारण साहब चढ़ी आया राजा,
जिन्नी आई के एह फरमाया राजा,
इसकी शाहपुर देणा इनाम राजा,
इसकी कांगड़ा देणा इनाम राजा,
जिहदे ऐसे लड़दे जुआन राजा,
जिन्हां राजपूतां दी रख दी आन राजा,
कोई ऐसा पठानिया खूब लड़या,
बेटा बजीर दा खूब लड़या।
असीं नहीं इनामां दे भुक्खे राजा,
गोरयां नाल करनी लड़ाई राजा,
असां नूरपुर लैण बचाई राजा,
कोई ऐसा पठाणिया खूब लड़या,
बेटा बजीर दा खूब लड़या।
न्हाई धोई राजा पूजा कर बहिंदा,
किन्नी भाइए दगा कमाइया राजा,
पूजा पर दित्ताा पकड़ाई राजा,
कोई ऐसा पठानिया खूब लड़या,
बेटा बजीर दा खूब लड़या।

कांगड़ा की लोक गाथाओं का एक रूप है – 'ढोलरू'। 'ढोलरू' गाथाएं चैत्र मास में गायी जाती है। जिसमें डोम समुदाय के लोगों द्वारा घर-घर जाकर ढोलरू गाने की परम्परा रही है। चैत्र मास वर्ष का प्रथम मास है। इसी मास मे भारतीय कालगणना के अनुसार शुक्ल प्रतिपदा को युगाब्द तथा

भारत में प्रचलित विक्रमी, शक आदि भिन्न-भिन्न सम्वतों का शुभारम्भ होता है। नव संवत्सर का यह मास लोक में मंगलमयी महीना कहलाता है। इस मंगलमुखी मास का नाम स्वयं उच्चारण करने से पहले ढोलरू गायकों के मुख से श्रवण करना शुभ माना जाता है। ढोलरू गाथाएं अनेक प्रसंगों पर आधारित होती हैं जिनमें प्रमुख ढोलरू है – 'पहलां जां नां लेण नारायणे दा नां।' इस ढोलरू में सबसे पहले भगवान् नारायण, दूसरे स्थान पर माता-पिता और तीसरे स्थान पर गुरु महाराज का नाम स्मरण किया जाता है। उसके बाद चैत्रमास का वसन्त-बहार का वर्णन करके अन्त में भगवती पार्वती या भगवती सीता के विवाह का संक्षिप्त प्रसंग सुनाया जाता है। इस ढोलरू गाथा के प्रारम्भिक बोल इस प्रकार से हैं –

पहलां जां नां लेण नारायणे दा नां।
जिन्नी सारी दुनिया बसायी ऐ नां।
दुआ जां नां लेणा माई बाप दा नां।
जिन्नी जम्मीं दस्या संसार ऐ जां।
त्रीया जां नां लेणा गुरु अपने दा नां।
जिन्नी सारी विद्या सिखलाई ऐ नां।
हियूंद जां गिया नीं घर अपनणे एनां।
आया चैत्र महीना रित बहार ऐनां।

त्रिगर्त-कांगड़ा मे भारतीय संस्कृति के सर्वांगीण ग्रन्थ रामायण और महाभारत की विविध कथाएं मूलकथा कथासूत्र के साथ अनेक स्थानीय संदर्भो को सम्बन्धित करके सुनाई जाती है। यहां रामायण और पाण्डवायण नाम से इन कथाओं का गेय गाथाओं के रूप में भी प्रचलन रहा है जिसके अतिरिक्त लोक वार्ताओं में पाण्डव भ्रमण के साथ यहां सभी प्रमुख मन्दिर और अनेकों स्थल जोड़े जाते हैं। जैसे बतलाया जाता है कि चामुण्डा देवी के समीप लाखा मण्डल में पाण्डव लाक्षागृह से बच निकल कर पहुंच थे। ज़िला हमीरपुर के टौणी देवी मन्दिर के समीप वारीं गांव में पन चक्की के दो विशाल पाट हैं। इन्हें भीम बट्ट कहा जाता है। कहते हैं कि भीमसेन की बक्कर खड्ड को इस ओर लाकर यहां पनचक्की 'घराट' लगाने की योजना थी। जैसा कि सब जगह कहा जाता है कि पाण्डव एक रात में ही एक स्थान का काम पूरा करके आगे प्रस्थान करते थे। यहां भी ऐसा ही हुआ। प्रभात का अभास होने पर ये अन्यत्र चले गए और कार्य अधूरा रह गया तथा वे विशाल पाट आज भी लोक वार्ता में उस घटना के साक्षी बने हुए हैं।

यहां के दो प्रमुख मन्दिर स्थल लोकवार्ताओं में रामायणकाल से जुड़ते हैं। एक हैं वैद्यनाथ धाम 'बैजनाथ'। यहां के सम्बन्ध में जनश्रुति है कि लंकाधिपति रावण भगवान शिव की घोर तपस्या करके उन्हें कैलाश से लंका में ले जा रहे थे। रावण लंका जाते हुए मार्ग में शिवलिंग को धरती पर न रखने की शर्त का पालन नहीं कर पाए और कैलाशपति शिव बैजनाथ में अधिष्ठित हो गए। रावण यहीं शिव आराधना में लीन हो गए और उसने अपने दस शीश हवन यज्ञ में होम कर दिए। भगवान्

शिव की कृपा से उसके दसों सिर पुनः धड़ से जुड़ गए। इससे भावाभिभूत होकर रावण के मुख से यह शब्द निकले कि हे प्रभु! तुम तो वैद्यों के भी नाथ (स्वामी) हो। इसलिए यहां शिव भगवान् वैद्यनाथ नाम से पूजित हुए। वैद्यनाथ शिव की निवास भूमि को भी वैद्यनाथ कहने लगे। कालान्तर में वैद्यनाथ शब्द बदल कर बैजनाथ हो गया है। रामायणकाल का दूसरा स्थान इन्दौरा विकास खण्ड में काठगढ़ का शिवमन्दिर है। कहा जाता है कि भरत अपने ननिहाल केकय देश 'कश्मीर' को यहां से होकर जाते थे और आते-जाते काठगढ़ शिव मन्दिर में पूजा अर्चना किया करते थे।

कांगड़ा वासियों का देवी-देवताओं के प्रति अटूट विश्वास है। अतः स्वाभाविक है कि यहां के लोक-साहित्य में देवी देवताओं की महिमा का प्रखर गुणगान मिलता है। नगरकोट वासिनी भगवती ब्रजेश्वरी के गीत में माता के भवन की महिमा पाई गई है कि माता तेरा सुन्दर भवन एक ऊंची पहाड़ा के बीच कांगड़ा के टीले पर है –

माता तेरा भौण सुहाणा,
टिल्ला कांगड़ा ऊंची धारा।

ज्वाला माता के लोकगीत में कहा जाता है कि ज्वाला माता का मन्दिर ज्वालामुखी शहर में है जहां न जाने कैसे छेदक उपकरण 'बरमा' का प्रयोग हुआ है कि मन्दिर में ज्वालाएं प्रज्जवलित हो रही हैं। इस गीत में पाण्डवों द्वारा यहां माता का भवन बनाने तथा मुगल बादशाह अकबर के छत्र चढ़ाने की भी बात कही गई है। जैसे –

सुण कांगड़े दे भले ओ माण्डुआं
सैहर ज्वालामुखी मन्दर ओ।
ऊंचे आ पहाड़ा बरमा लगेआ,
जोतां जगदियां मन्दर ओ।
किन्नी-किन्नी माता मेरा भवन बणाया,
किन्नी माता चौंर झुलाया ओ।
पंजा-पंजा पाण्डवां तेरा भवन बणाया,
अर्जुन चौंर झुलाया ओ।
नंगी नंगी पैरी माता अकबर आया,
सोने दा छत्र चढ़ाया ओ।
छत्रा सोने दा बणेआं करूपा,
अकबर मान घटाया ओ।

कैलासपति भगवान् शिव को यहां के धर्मप्रधान लोग कांगड़ा की उन्नत शैलमाला धौलाधार का राजा मानते हैं। भगवान् शिव के प्रति इनकी श्रद्धा भावना का स्फुरण इन स्वरों में हुआ है –

शिव कैलासों के बासी, धौलीधारों के राजा,
शंकर संकट हरणा।

वास्तव में त्रिगर्त कांगड़ा के लोक-साहित्य का वाचिक परम्परा में विपुल भण्डार विद्यमान है। यहां इसके कुछ अंशों का ही उल्लेख संभव हुआ है। यहां के लोक-गीतों, लोक कथाओं,

लोक-गाथाओं, लोकोक्तियों, पहेलियों आदि लोक-साहित्य की विविध विधाओं पर अनेक ग्रन्थों की रचना की जा सकती है। इसके लिए व्यापक कार्य योजना की अपेक्षा है। इसी के माध्यम से ही ज्ञान पिपासु लोग यहां की लोकभूमि का सत्य दर्शन कर सकते हैं। महर्षि वेदव्यास का यह संदेश इस ओर सदैव प्रेरित करता है - 'प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः' अर्थात् लोक की पूर्ण पहचान के लिए लोक का पूरी आस्था के साथ प्रत्यक्ष दर्शन किया जाना आवश्यक है।

कांगड़ा के लोक-साहित्य के संकलन एवं विवेचन का पर्याप्त महत्त्वपूर्ण कार्य अब तक प्रकाश में आया है। पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख इस सम्बन्ध में छपे हैं। संभवतः महेन्द्र सिंह रन्धावा की 'कांगड़ा-देश, काल और गीत पुस्तक इस दिशा में प्रथम सुनियोजित प्रयास है। तदोपरान्त डॉ. शमी शर्मा, आदि लोक साहित्य के अनेक विद्वानों ने लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं पर उपयोगी कार्य किया है। तथापि, यहां यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि कांगड़ा के लोक साहित्य के संकलन तथा विवेचन का सर्वाधिक कार्य डॉ. गौतम व्यथित द्वारा सम्पन्न किया गया है। इनकी त्रिगर्त कांगड़ा के लोक साहित्य की भिन्न-भिन्न विधाओं पर पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जो कि लोक साहित्य के आलोक में त्रिगर्त के इतिहास, परम्परा और सम्पूर्ण लोक जीवन के अध्ययन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रेरणास्पद हैं।

मनु महाराज का घर मनाली

भारतीय मनीषियों ने सर्वोच्च अध्यात्म साधना के बल पर अपनी अन्तर्दृष्टि से काल का साक्षात् दर्शन कर के इसका व्यापक विवेचन किया है, जिसके अन्तर्गत काल की छोटी से छोटी इकाई परमाणु और सामान्यतः बड़ी से बड़ी इकाई महाकल्प है। महाकल्प ब्रह्मा की १०० वर्ष की पूर्ण आयु है। ब्रह्मा की १०० वर्ष की आयु मानव वर्षों के अनुसार ३१ नील खरब ४० अरब वर्ष मानी जाती है।

ब्रह्मा का एक दिन कल्प कहलाता है। एक कल्प १४ मन्वन्तरों में विभक्त है। एक मन्वन्तर, ७१ महायुगों का होता है। महायुग को चतुर्युग भी कहते हैं जिसमें सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग सम्मिलित हैं। इन चार युगों से भारत का जनमानस भली-भान्ति परिचित है और यही कालबोध भारत के जनमानस की ज्ञान चेतना का प्रखर प्रमाण है, जिसने अपनी परम्परागत अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर को पूरी आस्था के साथ संजोया हुआ है।

प्रत्येक मन्वन्तर का प्रवर्तक मनु कहलाता है और मनु के नाम पर सम्बन्धित मन्वन्तर का नाम पड़ता है। १४ मन्वन्तरों में अब तक ६ मन्वन्तर बीत चुके हैं और इस समय सातवां वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। त्रिकाल वेत्ता शास्त्रकारों ने हिन्दू समाज में किसी भी अनुष्ठान कर्म को प्रारम्भ करते हुए संकल्प पाठ करने की व्यवस्था दी है। इस संकल्प पाठ में कल्पादि से आज तक भारतीय कालगणना पूर्णतया संरक्षित रही है, जिसके अनुसार इस समय भगवान् ब्रह्मा की आयु के दूसरे परार्द्ध में श्वेतवाराह नामक कल्प के अन्तर्गत वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें कलियुग का प्रथम चरण चल रहा है। संकल्प पाठ के आरम्भ में इसका उल्लेख इस प्रकार है –

ॐ अद्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे
वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे

इससे स्पष्ट है कि वर्तमान समय के मन्वन्तर में वैवस्वत मनु का साम्राज्य है। शतपथ ब्राह्मण एवं मत्स्य पुराण आदि भारतीय इतिहास पुराण ग्रन्थों में वर्णन आता है कि वैवस्वत मन्वन्तर के आरम्भ होने से पूर्व एक भीषण जल प्लावन हुआ था। उस समय मनु महाराज और सप्त ऋषि एक नाव में बैठकर मत्स्य भगवान के संरक्षण से एक सुरक्षित स्थान पर पहुंचे। जल प्लावन से पहले वे द्रविड़ देश के राजा थे। द्रविड़ देश में कृतमाला नदी में जल से तर्पण करते समय एक छोटी सी मछली उनके हाथ में आ गई, जिसे राजा सत्यव्रत ने जल के साथ ही नदी में डाल दिया –

सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत।
उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविड़ेश्वरः।। श्रीमद्भागवत - ८.२४.१३

जल प्रलय की समाप्ति के उपरान्त राजा सत्य व्रत भगवान की कृपा से ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न होकर इस कल्प में वैवस्वत मनु हुए -

स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः।
विष्णोः प्रसादात् कल्पेऽस्मिन्नासीद् वैवस्वतो मनुः।। श्रीमद्भागवत - ८.२४.५८

एक सुनियोजित दुष्प्रयोजन से तथाकथित बुद्धिजीवियों द्वारा यह धारणा स्थापित की गई है कि द्रविड़ लोग आर्यों से नितान्त भिन्न हैं। राष्ट्रीय भावना के विध्वंसक इन लोगों का यह आर्यों और द्रविड़ों के बीच भिन्नता दिखाकर विद्वेष की भावना पैदा करने का षड्यन्त्र है। ऐसी सोच वाले लोगों से सावधान रहते हुए भारतीय जनमानस को यह जान लेना आवश्यक है कि हमारे शास्त्र ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख है कि वर्तमान मन्वन्तर के संस्थापक वैवस्वत मनु द्रविड़ेश्वर के रूप में समादृत हैं। अतः आर्य और द्रविड़ समाज का परस्पर एकमेव अभिन्न सम्बन्ध है।

जल प्लावन की समाप्ति के बाद के प्रारम्भिक दिनों में मनु महाराज हिमाचल प्रदेश के जिला कुल्लू में मनाली नामक स्थान पर रहे हैं। मनु महर्षि या मनु महाराज के भारतवर्ष में अनेकों पूज्य स्थान हैं लेकिन इनका प्रधान स्थान मनाली माना जाता है। यह मनु का आलय – 'मन्वालय' अर्थात् मनु के घर के रूप में मान्यता प्राप्त है। मन्वालय शब्द ही ध्वनि परिवर्तन के भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुरूप मनाली हो गया है। मनाली से ही मनु महाराज ने आदर्श मानव समाज की स्थापना के लिए अद्वितीय विधि-विधान स्थापित किए जो वर्तमान समय में भी बहुत प्रासंगिक हैं।

मनाली में मनु महाराज का प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर में स्थापित मूर्ति गांव के बीच एक घर की पशुशाला से मिली है। सामान्यतः देव मकान या भवन को मन्दिर कहा जाता है। हिमाचल प्रदेश की पहाड़ी बोलियों में इसके लिए मन्दिर, मन्दर, डेहरा, देहरा, भण्डार, मंढार आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। परन्तु यहां मनु महाराज की मूर्ति प्राप्ति स्थल के मकान को ये मन्दिर-वाची शब्द प्रयोग नहीं होते। इस मकान को 'देऊआ रा घौर' अर्थात् देवता का घर कहते हैं। इस प्रकार देवता का घर का कहना, इस बात का परिचायक है कि यहां पर मनु महाराज का दीर्घकाल तक स्थाई निवास रहा है। प्राकृतिक सौन्दर्य और सांस्कृतिक वैभव परिपूर्ण मनाली का नाम पर्यटन मानचित्र पर विश्वविख्यात होने से नया मनाली शहर अस्तित्व में आने पर मनाली गांव जहां मनु महाराज का मन्दिर है, अब पुरानी मनाली कहलाता है। नए मनाली शहर जिसका पुराना नाम 'दाणा आघै' है, से यहां की दूरी डेढ़ किलामीटर है। कुल्लू शहर से मनाली उत्तर दिशा में ४० किलोमीटर दूर है।

जनश्रुतियों में कहा जाता है कि मनाली गांव के धोणा चाणी नामक वंश के एक परिवार में हजारों वर्ष पहले गौरी नाम की महिला थी। एक दिन जब परिवार के दूसरे लोग खेतों में काम करने गए हुए थे तो गौरी परिवार का कलार (दिन का भोजन) बनाने तथा पशु सेवा आदि कार्यों को निपटाने के लिए घर पर अकेली थी। उस समय एक साधु इस घर में आ पहुंचा। गौरी साधू को अनाज का टोकरा लाकर भिक्षा देने लगी तो साधु ने भिक्षा लेने से इन्कार किया और कहा कि 'बेटी! मुझे कुछ नहीं चाहिए, तुम मुझे दूध पिलाओ, बस इतनी सी इच्छा है।'

गौरी ने अपनी विवशता बतलाई – ''बाबा! हमारे घर में दूध देने वाली गाय नहीं है, केवल बछिया है। इसलिए दूध पिलाना मेरे लिए संभव नहीं है।''

साधु बोला, ''बेटी! तुम बछिया को दुह लो, दूध भर जाएगा।''

उस काल में साधु प्रायः ईश्वर भक्त होते थे और लोक उनकी वाणी पर अटूट विश्वास रखते थे। इसी विश्वास से गौरी से बछिया के थनों को दुहा तो सचमुच थनों से दूध की धारा झर गई। बछिया दुह कर गौरी लाई तो साधु कहने लगा, ''बेटी! मेरा मन दही खाने को कर रहा है। तुम इस दूध को दूसरे बर्तन में उडेलो, इसका दही बन जाएगा।'' गौरी ने वैसा ही किया और दूध उडेलते ही दही बन गया। इसी बीच खेत से दूसरे लोग भी वापिस लौट आए। उन्होंने घर पर बाबा को देखा तो सभी ने प्रसन्नता से उनका अभिवादन किया। गौरी के हाथ में दही का कटोरा देखा तो उनके पिता ने पूछा, ''यह दही तुम कहां से लाई हो?'' गौरी ने बाबा के अलौकिक चमत्कार की सारी बात सुनाई। यह बात कानों-कान गांव में फैल गई। गांव के कुछ अन्य लोग भी वहां इकट्ठे हो गए। लोग बड़ी रुचि से साधु की ज्ञान-उपदेश की बातें सुन रहे थे। एक वृद्ध व्यक्ति ने श्रद्धाभिभूत हो कर साधु से पूछा, ''बाबा! आप साधारण साधु नहीं हैं। आप बहुत उच्च सिद्धि प्राप्त ऋषि लगते हैं। आप ने यहां आकर अपने दर्शन से हमारे जीवन को सफल बनाया। आपका कहां से इधर आना हुआ और आगे कहां जाना है।'' तब साधु ने बतलाया, ''भक्तो! मैं मनु हूं। पृथ्वी के सेईमेई (जलमग्न) होने के बाद जब धरती पर पुनः जीवन आरम्भ हुआ तो उसका संचालन मैंने यहीं से किया था। यहां पर ऋषि-मुनियों से चिन्तन मनन करके हमने मानव समाज के विधान बनाए। जब मानव सृष्टि का नियमित संचालन प्रारम्भ हुआ जो हम पृथ्वी पर भ्रमण पर निकले। अनेक स्थानों पर हमने निवास किया। इस समय मैं भ्रमण पथ पर नेपाल से आकर यहां प्रकट हुआ हूं। उन्होंने बताया कि जब हम परिभ्रमण पर निकले थे, उस समय हमारे निवास पर श्रद्धालुओं ने हमारी स्मृति में एक मूर्ति स्थापित की थी जो लम्बी समय अवधि में प्राकृतिक उथल-पुथल में मिट्टी में दब गई। उसी स्थान पर बाद में आपका यह घर बना। इस घर के खुड़ (पशुशाला) में खुदाई कर के देख लो, वहां मेरी पिण्डी प्राण मूरत (प्राण-प्रतिष्ठित पत्थर की मूर्ति) मिल जाएगी। अब मैं अपने इसी स्थान पर वास करूंगा।'' यह कहते ही साधु बाबा एक दम से अन्तर्ध्यान हो गए।

साधु के अन्तर्ध्यान होने के उपरान्त लोगों ने पशुशाला में जाकर खुदाई की। खुदाई करते हुए पर्याप्त गहराई में जाकर मनु महाराज की मूर्ति मिल गई। खुदाई में मिली यह वही मूर्ति है, जिसकी महर्षि मनु के मन्दिर में मनु महाराज के रूप में पूजा की जाती है। जिस घर में यह मूर्ति मिली, वहां जो वर्तमान समय में घर है, यह उस समय का घर तो हो नहीं सकता, यहां समय-समय पर नये घर अवश्यमेव बनाए जाते रहे हैं, लेकिन अभी भी उस स्थान पर बने एवं उस सम्बन्धित परिवार के घर को देऊआ रा घौर (देवता का घर) कहते हैं।

गौरी के परिवार की वंश परम्परा की एक महिला इस समय देवता के घर में रहती है। लेखक

की उनसे वैशाख शुक्ल १२, कलियुगाब्द ५१०३ तदनुसार ५ मई, २००१ को भेंट हुई है। उस समय उनकी आयु लगभग ७० वर्ष थी। उन्हें लोग प्रायः दोली नाम से जानते हैं। वे दो बहनें इकट्ठी जन्मी थी, अतः दोली कहलाती हैं। इनका वास्तविक नाम श्रीमती भिक्खु है। हालांकि, मनाली गांव में मनु महाराज के प्राचीन मन्दिर को भव्य स्वरूप प्रदान किया गया है, लेकिन प्रत्येक पर्व-त्यौहारों के अवसर पर देवता के उक्त घर में भी पूजा आराधना की परम्परा अनिवार्य रूप से विधिपूर्वक निभाई जाती है। अपने परिभ्रमण में मनु महाराज नेपाल से पुनः मनाली में आए, इसीलिए उन्हें यहां 'नरपाला रिशि' भी कहते हैं।

मनु महाराज के मन्दिर में प्रतिवर्ष वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को मेला लगता है। मनु महाराज के जन्म दिन के उपलक्ष्य में मनाया जाने वाला यह मेला 'छौठ' या 'छौठी री जाच' अर्थात् षष्ठी का मेला कहलाता है। यह मेला एक साल मनाली में मनु महाराज के मन्दिर में होता है और दूसरे साल गौतम ऋषि के मन्दिर में गौशाल में होता है। गौशाल गांव मनाली से उत्तर की और लगभग ३ किलोमीटर की दूरी पर है। जिस वर्ष मनाली के नाम से मेला होता है, उस वर्ष गौशाल के गौतम ऋषि जिन्हें लोग गौशाली नाग के नाम से भी जानते हैं, मनाली में आते है। इसमें गौतम ऋषि का रथ नहीं लाया जाता, केवल छड़ी आदि निशान लाए जाते हैं। मनाली में गौतम ऋषि को अर्थात् गौतम ऋषि के साथ आए लोगों को भौत्ती (प्रीतिभोज) दिया जाता है। दूसरे वर्ष मनु महाराज गौतम ऋषि के पास गौशाल जाते हैं। मनु महाराज का अपना रथ नहीं है। हिड़िम्बा माता के रथ में ही मनु जी का मोहरा (मुख-मूर्ति) स्थापित है। अतः मनु महाराज जहां भी रथ में जाते हैं तो हिड़िम्बा माता की प्रजा का रथ ही जाता है। मनाली में मनु महाराज की और हिड़िम्बा माता की प्रजा और प्रजाक्षेत्र एक ही है। कहा जाता है कि किसी समय मनु महाराज का अपना रथ होता था, लेकिन वह रथ किसी कारण इतना हिलता-जुलता था कि रथ उठाने वालों को रथ संभालना कठिन हो जाता था। इसलिए देव इच्छा के बाद में हिड़िम्बा माता के रथ में ही मनु जी का मोहरा प्रतिष्ठित किया गया। जब मनु महाराज गौशाल जाते हैं तो उनका अर्थात् हिड़िम्बा माता का रथ वहां जाता है। गौशाल में गौतम ऋषि की ओर से मनु महाराज को भौत्ती दी जाती है। सांयकाल में गौतम ऋषि अपने रथ के साथ मनु महाराज को छोड़ने मनाली आते हैं। मनु जी को मनाली पहुंचा कर गौतम ऋषि वापिस लौटते हैं। यदि कभी गौतम ऋषि मनाली में ही ठहरें तो देवता के साथ आए लोगों को 'खीण्ड' डाली जाती है। खीण्ड में अतिथि देवता के साथ आए लोगों को बांट कर के अलग-अलग घरों में ले जाते हैं, जहां उन्हें पूरे आदर-सत्कार के साथ भोजन करवाया जाता है। ठहरने की स्थिति में रात्रि विश्राम मनाली में कर के दूसरे दिन प्रातः ही देवता वापिस गौशाल लौट जाते हैं। इस प्रकार छौठ मेले में एक वर्ष मनु महाराज की ओर से गौतम ऋषि को प्रिति-भोज दिया जाता है जिसे मनु महाराज की भौत्ती कहते हैं और दूसरे वर्ष गौशाल में मनु महाराज के सम्मान में दिए जाने वाले प्रितिभोज को गौशाली नाग या गौतम ऋषि की भौत्ती कहा जाता है।

मनु महाराज मन्दिर का दूसरा प्रमुख मेला 'फागली का मेला' होता है। फागली मेला माघ मास के दूसरे रविवार को आरम्भ किया जाता है। यदि कभी माघ संक्रान्ति रविवार को हो तब फागली मेला दूसरे रविवार माघ प्रविष्टे ८ को शुरू न करके तीसरे रविवार से इसे शुरू करने की प्राचीन परिपाटी है। फागली मेला का सम्बन्ध टुण्डी राक्षस और टिम्बर शौचका के साथ जोड़ा जाता है।

टुण्डी राक्षस एक अति आतंकवादी बलशाली राक्षस था। यह राक्षस वर्तमान चम्बा जिला के पांगी क्षेत्र में रहता था। राह चलते आदमियों को यह अपना आहार बनाता था। उसके आतंक को नियन्त्रित करने के लिए पांगी के उस समय के शासक ने व्यवस्था बनाई ताकि वह राक्षस हर समय आतंक न मचाए। वह प्रतिदिन एक-एक गांव में जाए, वहां गांव वाले बारी-बारी से एक आदमी उसके भोजन के लिए सुलभ करवाएंगे। एक दिन वह जिस गांव में गया, उस गांव के जिस परिवार के आदमी ने उसका आहार बनना था, उस परिवार में तीन सदस्य थे – दो भाई और एक उनकी बुढ़िया मां। दो भाइयों में से एक ने राक्षस की बलि के लिए जाना था। उनमें बड़े भाई ने कहा, मैं बड़ा हूं, इसलिए मुझे ही राक्षस की बलि के लिए जाना है। छोटा भाई कहने लगा कि बड़े भाई को जीवन का गहरा अनुभव प्राप्त है। उनके जीवित रहने से जहां बुढ़िया मां की सेवा टहल ठीक रहेगी, वहां आप के जीवन का अनुभव समाज के लिए बहुत उपयोगी रहेगा। इसलिए राक्षस के पास वह जाएगा। इस वाद-विवाद में दोनों राक्षस के पास चल पड़े। दोनों अपनी-अपनी बात पर अड़े हुए थे। इसी विवाद के चलते उन्होंने निर्णय लिया कि वे दोनों राक्षस के पास नहीं जाएंगे अतः वे दोनों पांगी से भाग गए और काशी में जा पहुंचे। काशी में उन्होंने तन्त्र विद्या का अध्ययन किया और तन्त्र विद्या का गूढ़ ज्ञान प्राप्त कर वापस पांगी लौटे। एक दिन फिर उनकी राक्षस के पास जाने की बारी आई। इस बार भी दोनों भाई पूरी योजना बना कर राक्षस के पास गए। एक भाई अपने साथ ढोल ले गया था, वह राक्षस के स्थान पर पहुंच कर ढोल बजाने लगा। राक्षस वहां प्रगट हुआ और वह दोनों भाइयों को खाने के लिए पकड़ने लगा। इस पर उन्होंने राक्षस से कहा कि देख भाई! हम तो तेरे भोजन के लिए ही यहां आए हैं। लेकिन, हम सोचते हैं कि मरना ही है तो क्यों न खुशी-खुशी मरा जाए। इसलिए पहले हम नाचने-गाने का कार्यक्रम करते हैं, बाद में तुम हमें खा लेना। राक्षस इस बात को मान गया। एक भाई ढोल बजाने लगा और दूसरा राक्षस का हाथ पकड़ कर नाचने लगा। दोनों भाइयों ने राक्षस की शक्ति क्षीण करने के लिए तन्त्र विद्या का प्रयोग किया। राक्षस को अपनी क्षीण होती शक्ति का आभास हो गया। वह अपना हाथ छुड़वा कर वहां से भागने का प्रयत्न करने लगा। साथ नाचने वाले भाई ने उनका हाथ इतनी मजबूती से पकड़ रखा था कि वह उसे छुड़वा न सका। खींचतान करते-करते आखिर उसका हाथ शरीर से अलग हो गया। वह एक हाथ से हीन हो कर वहां से भागा और कुल्लू में जा पहुंचा। हस्त विहीन व्यक्ति को कुल्लू की बोली में 'टुण्डा' कहते हैं। इसीलिए उस राक्षस का टुण्डा राक्खस (राक्षस) या टुण्डी राक्षस नाम पड़ा।

कुल्लू में टुण्डी राक्षस कालंग-शालंग गांव में पहुंचा। वहां वह देवी-देवताओं के जप-तप

आदि कार्यों में विघ्न डालने लगा। उस गांव में 'टिम्बर शौचका' नाम की एक बड़ी सुन्दर कन्या थी। टुण्डी राक्षस ने देवी-देवताओं से कहा कि यदि वे टिम्बर शौचका का विवाह उससे करा देंगे तो वह किसी प्रकार का विघ्न देवी-देवताओं के काम में नहीं डालेगा। सभी देवी-देवता उसके प्रस्ताव को लेकर मनाली में मनु महाराज के पास गए। मनु महाराज की सहमति से टिम्बर शौचका का विवाह टुण्डी राक्षस से हो गया। विवाह के बाद इनकी आपस में अनबन हो गई और एक दिन आपसी झगड़े में टुण्डी राक्षस ने टिम्बर शौचका को खा लिया। इस पर देव समाज क्रोधित हो गया और उन्होंने टुण्डी राक्षस के मुंह में लकड़ी के बड़े-बड़े शहतीर ठूंस दिए तथा उसको वहां से भगा दिया।

ऐसा भी कहा जाता है कि टिम्बर शौचका देवी-देवताओं की धर्मबहन थी। टुण्डी राक्षस को धर्म बहन देने से रिश्ता बन जाने पर उससे अनुकूल व्यवहार की आशा की गई थी। परन्तु, टुण्डी राक्षस अपना स्वभाव नहीं छोड़ सका, जिससे तंग आकर देव समाज ने उनके मुंह में तोस वृक्ष के बड़े-बड़े शहतीर ठूंस दिए।

तब वह वहां से भागने के लिए विवश हुआ। वह इधर से भाग कर लाहौल में तांदी जाकर रहने लगा। टिम्बर शौचका जिसे टुण्डी ने खाकर जीवित उगल दिया था, वह भी उसके साथ गई। मनाली से जाते हुए टिम्बर शौचका ने देव-समाज से कहा कि तुमने मेरा विवाह टुण्डी से करवाया और अब हमें भगा रहे हैं। तब देव-समाज ने टिम्बर शौचका को आश्वस्त किया कि माघ-फाल्गुन महीने में फागली के मेले तेरे मान-सम्मान में देव स्थानों पर मनाए जाएंगे जिसमें तुम प्रतिवर्ष टुण्डी राक्षस के साथ आओगी। इसी वचनबद्धता के अनुपालन में माघ महीने का फागली मेला पहले दिन मनु महाराज के मन्दिर में होता है और उसके बाद मनाली के आस-पास के क्षेत्रों के देव स्थानों पर यह मेला मनाया जाता है। उस मेले में टिम्बर शौचका और टुण्डी राक्षस के भी भाग लेने की मान्यता है। जिन शहतीरों के मुंह में ठूंसने से टुण्डी राक्षस को मनाली से भागना पड़ा था, उसका भय टुण्डी राक्षस में सदा दिखाने के लिए प्रत्येक तीसरे वर्ष बड़े-बड़े आकार के शहतीर जो राक्षस की बीड़ी कहलाते हैं, मनु महाराज के मन्दिर के आगे बने एक चबूतरे पर रखे जाते थे और साथ में कुछ छोटे-छोटे शहतीर रखते थे जिन्हें 'मिहणी' कहते हैं। राक्षस के मुंह में बड़े शहतीरों को घुसाने-खिसकाने के लिए इन मिहणियों का प्रयोग होता था। अब इन शहतीरों को प्रत्येक तीसरे वर्ष में नहीं रखते, लेकिन कुछ वर्षों के पश्चात् अभी भी पुराने के स्थान पर नए शहतीर लाकर रखे जाते हैं। अब इनको रखने के लिए मन्दिर के आगे एक सुरक्षित स्थान निर्धारित किया गया है।

लोकश्रुति में यह भी कहा जाता है कि जब टुण्डी राक्षस मनाली में रहता था तो उसके लिए प्रतिदिन यहां मुर्दा जलाया जाता था। मुर्दा जलाने पर धुएं से आती मानस गन्ध से उसकी तृप्ति होती थी। इसलिए यहां प्रतिदिन दूर-दूर से लाकर मुर्दे जलाए जाते थे। किसी दिन यदि कोई मुर्दा न जले तो उस दिन चबूतरे के पास चिता स्थल पर उआसी रा पूला (सूखे घास का गट्ठर) जलाया जाता था। जिसके धुंए से उस स्थान पर पहले जले मुर्दे की गन्ध मिलने पर राक्षस की सन्तुष्टि बनी रहती थी।

फागली मेले में एक प्रथा है कि यार-मित्र आपस में चुपके से एक दूसरे के बाल जलाने का प्रयास करते हैं। माना जाता है कि इस प्रकार बाल जलाने पर मानव-गन्ध की अपेक्षा रखने वाले टुण्डी राक्षस का उचित अतिथि सत्कार होता है। इस सत्कार से मेला निर्विघ्न सम्पन्न होता है और वर्ष भर क्षेत्र में सुख-समृद्धि रहती है।

जल प्रलय के बाद मनाली से मनु महाराज द्वारा मानव सृष्टि का संचालन करना एक अन्य लोक मान्यता से भी सिद्ध होता है। व्यास नदी के बायीं ओर मनाली से ७ किलोमीटर की दूरी पर जगत सुख नाम का गांव है। यहां पर वेद माता संध्या गायत्री का प्राचीन मन्दिर है। कहते हैं कि जब प्रलय के उपरान्त मानव सृष्टि को नए सिरे से बसाने-चलाने की प्रक्रिया शुरू कर के यहां ''ग्यारी' जलाई। कुल्लूवी बोली में ग्यारी जलाने से तात्पर्य है छोटे स्तर पर हवन यज्ञ की प्रक्रिया सम्पन्न करना। संभवतः यज्ञ का प्राथमिक स्वरूप यही रहा होगा, जो कुल्लू में आज भी प्रचलित है। कुल्लूवी का ग्यारी शब्द यज्ञ-क्रिया का ही स्थानीय रूप है।

भारतीय परम्परा में वैवस्वत मनु को वर्तमान मन्वन्तर का प्रथम पुरुष तथा पृथ्वी का शासक माना जाता है। लोक परम्परा में भी महर्षि मनु जहां एक ऋषि एवं देवता के रूप में पूजित हैं और उन्हें मन्वन्तर के प्रथम पुरुष का स्थान प्राप्त है, यहां इनके नाम का स्मरण एवं सम्बोधन 'मनु महाराज' के रूप में ही किया जाता है जो इस तथ्य का परिचायक है कि महर्षि मनु एक शासक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

मनु महाराज ने प्रजावत्सल, कर्त्तव्यपरायण शासक की भान्ति मानव समाज की सुव्यवस्था के लिए विधि-निषेधों का एक उत्कृष्ट विधान बनाया। कुल्लू के देवी-देवता, कुल्लू के राजा एवं राजवंश के प्रमुख को आज भी 'बधाणी' शब्द से सम्बोधित करते हैं। बधाणी से तात्पर्य है - विधान बनाने और चलाने वाला। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम बधाणी अर्थात् पहले विधान निर्माता शासक मनु महाराज की परम्परा से यह शब्द कुल्लू नरेशों के लिए इसी तात्पर्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अथर्ववेद में उल्लेख है कि हिमवत पर्वत के जिस शिखर पर नाव उतारी गई थी, वहां अमृत के तुल्य कुठ नामक औषधी उत्पन्न होती थी –

यत्र नावप्रभंशनं यत्र हिमवतः शिरः।
तत्रामृत्स्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।। (अथर्ववेद - १९.५.३८.८)

मनाली समुद्रतल से २०५० मीटर की ऊँचाई पर है। मनाली के समीप में ४२६८ मीटर की ऊँचाई पर हामटा नामक पर्वत स्थित है। यह हामटा पर्वत हिमवत पर्वत संभावित है, क्योंकि आज भी इसके समीपस्थ क्षेत्र कुठ नामक औषधि के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। इस स्थान पर नाव का उतारना, मनु महाराज की उसी नाव के लिए कहा गया है जिसका आख्यान लोकमानस में बहुत प्रसिद्ध रहा है। महाभारत में भी वर्णन है कि जब मत्स्य भगवान् ने ऋषियों से कहा कि इस नाव को इस हिमवत (बर्फ वाले) शिखर से बांध लो और ऋषियों ने यह वचन सुनकर वहां नौका बांध दी –

अस्मिन् हिमवतः श्रृंगे नावं बध्नीत मा चिरम्।

सा बद्धा तत्र तैस्तूर्णमृषिभिर्भरतर्षभ । । (महाभारत, वन पर्व- १८७.६६)

इस हिमवत - हामटा पर्वत पर नाव बांध कर मनु महाराज ने सप्तऋषियों के साथ ६,००० मीटर ऊँचे पर्वत शिखर पर विश्राम किया। इस स्थान को 'देऊ टिब्बा' कहते हैं। देऊ टिब्बा का अर्थ है 'देवताओं का टीला'। देऊ टिब्बा से मनु महाराज ने महाप्रलय का जो दृश्य देखा उससे लगता है कविवर जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में उसी भीषण दृश्य का सजीव रोमाञ्चक चित्रण इन शब्दों में किया है –

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छांहे
एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह ।।
नीचे जल था ऊपर हिम था एक तरल था एक सघन ।

जब प्रलय समुद्र का जल धीरे-धीरे नीचे उत्तरा तो मनु महाराज और सप्त ऋषि भी नीचे उतर आए। तब उन्होंने ऊँचे स्थानों पर जो कुछ लोग, ऋषि-महात्मा बचे थे उन्हें संगठित किया। इसी मध्य मनु महाराज ने मनाली को अपना निवास बनाया। उसी के समीप गौशाल में गौतम ऋषि ठहरे। मनाली के सामने बौशट गांव में वशिष्ठ ऋषि रहने लगे। महर्षि जमदग्नि हामटा में रहे और कालान्तर में मलाणा में जा बसे। गड़सा घाटी के नंजा में अत्रि ऋषि ठहरे। सप्तर्षियों में विश्वामित्र और भारद्वाज ऋषि के पूजा स्थल कुल्लू घाटी और हिमाचल प्रदेश में नहीं हैं। संभवतः उन्होंने यहां से कहीं दूरस्थ स्थानों पर जाकर तप- साधना की और वहीं समाज का मार्गदर्शन किया। दूसरी ओर कुछ काल के उपरान्त जनपद में आ बसे। जिनमें मनु स्मृति के प्रवक्ता भृगुऋषि का पावन स्थान मनाली के समीप भृगु सौर (भृगु सरोवर) है। इसके अतिरिक्त कुल्लू में मार्कण्डेय, शृंगी, शक्ति, पराशर, वेदव्यास, शुकदेव, नारद, दुर्वासा, गर्गाचार्य, परशुराम, लोमश, शांडिल्य, विभाण्डक, च्यवन, पुण्डरीक, कपिल, शौनक, याज्ञवल्क्य, धौम्य आदि ऋषियों के देवस्थल हैं। कुल्लू की सैंज घाटी की शैंशर कोठी के धारा देहुरा नामक स्थान पर मनु महाराज का एक और प्राचीन कलात्मक मन्दिर है, जो पैगोडा शैली में पांच छतों वाला है। **पांच छत में निर्मित यह संभवतः हिमाचल प्रदेश का एकमात्र मन्दिर है।** पैगोडा शैली के अन्य मन्दिर यहां तीन या चार छतों वाले हैं। उल्लेखनीय है कि यहां के मनु महाराज, देवता तथा देव प्रजा, मनाली को ही मनु महाराज का प्रधान स्थान मानते हैं। इसीलिए यहां के मनु महाराज कुछ वर्षों के अन्तराल में अपने प्रधान मूल स्थान के सम्मान में मनाली जाकर मनु महाराज के मन्दिर में उपस्थिति भरते हैं।

वेदों में मनु को यज्ञ परम्परा का संस्थापक माना जाता है। ऋग्वेद में लिखा है कि श्रद्धालु मन वाले मनु ने सबसे पहले अग्नि को प्रज्ज्वलित किया और सात होताओं के साथ देवताओं को हवन योग्य सामग्री अर्पित की। वे सभी देवता हमारे भयों को दूर करें। हमारे सब कर्मों को सरल करते हुए हमें कल्याण प्रदान करें –

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ।। ऋग्वेद १०.६३.७

मनु महाराज के द्वारा जल प्लावन के बाद जगतसुख में गायत्री मन्दिर के पास यज्ञ क्रिया के रूप में ग्यारी जलाई गई अर्थात् सूक्ष्म यज्ञ-क्रिया सम्पन्न की गई। यह लोकश्रुति भी मनु को प्रथम यज्ञकर्ता मानती है।

मनाली और जगतसुख के बीच एक 'शुरू' नामक गांव है। शुरू गांव पुराणों में उल्लिखित 'शरवण' वन का ही परिवर्तित रूप है। इस वन में शिव पार्वती के अभिशाप से मनु पुत्र इल अज्ञात समय में प्रविष्ट होने पर स्त्रीत्व को प्राप्त हो गया और उसका घोड़ा भी घोड़ी बन गई –

अज्ञातसमयो राजा इलः शरवणे पुरा।
स्त्रीत्वमाप विशेन्नेव वडवात्वं हयस्तदा।। मत्स्य पुराण ११.४७

जब इक्ष्वाकु आदि परिवारजन इल की खोज में यहां पहुंचे तो उन्होंने अपने कुल-पुरोहित वसिष्ठ ऋषि से मार्गदर्शन पाकर भगवान शिव की आराधना की और इल को पुरुषत्व प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। शिव-पार्वती की कृपा से उन्हें एक मास स्त्री और एक मास पुरुष बने रहने का वरदान मिला। स्त्री वेश धारी इला चन्द्र पुत्र बुध की पत्नी बनी, जिसकी संतति आगे चलकर चन्द्रवंशी कहलाई। इला उस काल में जहां रही, वह स्थान शुरू और मनाली के बीच स्थित 'अलोऊ' कहलाता है। इला से ही अलेऊ शब्द बना है। अलेऊ में सृष्टि नारायण का मन्दिर है। सामान्यतः यहां मनु महाराज को ही सृष्टि नारायण माना जाता है।

इस प्रकार लोकश्रुतियों और वेद पुराणों के विविध कथानकों का गहन विश्लेषण करें तो यही निष्कर्ष उभर कर सामने आएगा कि मनु महाराज का घर 'मनाली' वैवस्वत मनु का आदि निवास स्थान है और मनाली से ही वैवस्वत मन्वन्तर की मानव सृष्टि के नवसृजन का समारम्भ हुआ है।

विषुव का त्यौहार : विशु-बसोआ

बसन्त के आगमन के साथ ही प्रकृति विविध शृंगारों के अलंकृत होकर वातावरण में सर्वत्र एक सम्मोहन पैदा करती है और उसी बीच सूर्यदेव विषुवत् रेखा में प्रवेश करते हैं तथा इसी के साथ ही चैत्र मास में भारतीय मान्यता के अनुसार नये वर्ष का शुभारम्भ होता है। नववर्ष के उल्लास में इन दिनों मेले और त्यौहारों के आयोजनों की अटूट परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इस परम्परा की मौलिक अवधारणा के साथ कालान्तर में समय-समय पर कुछ अन्य प्रांसगिक संदर्भ भी जुड़ते रहे और परम्परा संश्लिष्ट होती चली गई। हिमाचल प्रदेश में चैत्र वैशाख के महीने में विशु एवं बसोआ के मेलों की रंगीनियां रहती हैं।

हिमाचल के विभिन्न स्थानों पर स्थान भेद से इस त्यौहार को विशु, विरशु, बिसु तथा बसोआ आदि अनेक नामों से जाना जाता है। ये सभी 'विषुव'शब्द से व्युत्पन्न हुए हैं। शरद् और बसन्त ऋतु के मध्य में जब सूर्य का तुला एवं मेष राशि में प्रवेश होता है, उस समय दिन और रात्रि समान हो जाते हैं। इस स्थिति काल को 'विषुव' काल कहा जाता है –

शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवं, तु विभाव्यते।
तुलामेषगते भानौ समरात्रि दिनं तु तत्।। विष्णु पुराण २/८/६८।।

पुराण शास्त्रों में वर्णन आता है कि पृथ्वी लोक में शृंगवान् नाम से विख्यात पर्वत के तीन शृंग हैं। जिसमें एक शृंग उत्तर में, एक दक्षिण में तथा एक मध्य में स्थित है। मध्य स्थित शृंग 'वैषुवत्' कहलाता है। शरद् और बसन्त ऋतु की कालावधि के बीच सूर्य इस वैषुवत् शृंग पर स्थित होकर रात्रि और दिन का परिणाम समान कर देते हैं। विषुव काल में ख्याति प्राप्त सूर्य की यह स्थिति काल बहुत पवित्र माना जाता है और इस समय में बहुविध पर्व त्यौहारों का आयोजन होता है।

विषुव कालों में वासन्तिक विषुव काल किसी-न-किसी प्रकार से पूरे भारत वर्ष में हर्षोल्लास से मनाया जाता है। परन्तु कुछ स्थानों पर न्यूनाधिक रूप में शारदीय विषुव काल मनाने की परम्परा भी प्रचलित रही है। आसाम में कार्तिक प्रतिपदा और वैशाख संक्रान्ति को इस त्यौहार को 'विहु' के नाम से मनाते हैं। कार्तिक मास के शारदीय विहु को यहां 'कंगाली विहु' तथा वासन्तिक विहु को 'रंगाली विहु' कहते हैं। कंगाली विहु के समय कृषकों के घरों में धन-धान्य के अभाव की स्थिति रहती है, अतः इसे शान-शौकत से नहीं मनाया जाता। लोग घरों में साधारणतः घी अथवा तेल के दीपक जलाकर परम्परा का निर्वाह करते हैं।

वैशाख संक्रान्ति को रंगाली विहु का अयोजन आसामवासी बड़ी धूम-धाम से करते हैं।

इनका यह आयोजन सप्ताह भर चलता है। इस अवसर पर जगह-जगह विहुतली (बिहु-स्थली) बनाई सजायी जाती है। जहां पर कि नृत्य संगीत एवं लोकानुरंजन के विविध कार्यक्रमों की धूम मची रहती है। केरल और तमिलनाडू में भी वैशाखी के अवसर पर यह त्यौहार 'विशु' नाम से आयोजित होता है। इन राज्यों में समुद्रतटीय लोग विशु के दिन प्रातः एक ऐसी नौका का दर्शन करते हैं, जिसमें अनाज, रुपये, आभूषण कटहल के फल रखे होते हैं। यह नौका 'विशुकनी' कहलाती है। जन विश्वास है कि विशुकनी के दर्शन से फसल का अच्छा उत्पादन होता है। विशु त्यौहार का सम्बन्ध इन प्रान्तों में धान की फसल बुआई के पर्व के रूप में भी जोड़ा जाता है। ऐसे ही पंजाब में गेहूं की फसल की कटाई से इस अवसर को जोड़ कर वैशाखी मनायी जाती है। वैशाखी त्यौहार पर पूरा पंजाब भंगड़ा और गिद्धा लोक-नृत्य से झूम उठता है।

हिमाचल प्रदेश में विषुव के मेले त्यौहार नव वर्ष आगमन से ही सम्बद्ध माने जाते हैं। इस त्यौहार को मनाने की शैली स्थान-भेद से भिन्न-भिन्न अवश्य है परन्तु इस संदर्भ में सर्वत्र एकरूपता है कि सभी विषुव मेले-त्यौहार यहां स्थानीय देवी-देवताओं की प्रधानता में मनाए जाते हैं। यहां यह त्यौहार चैत्र मास से प्रारम्भ होकर ज्येष्ठ मास तक चलते हैं। कुल्लू घाटी में विषुव के मेले त्यौहार को विरशु के नाम से जानते हैं। विरशु का त्यौहार कुछ स्थानों पर चैत्र संक्रान्ति को और कुछ स्थानों पर चैत्र प्रतिपदा को आयोजित होता है। अधिकांश स्थानों पर इसका आयोजन वैशाख संक्रान्ति तथा इसके बाद होता है। चैत्र मास के विरशु को यहां जेठा विरशु (ज्येष्ठ विरशु) तथा वैशाख मास के विरशु को कोन्हा विरशु (कनिष्ठ विरशु) कहा जाता है। जेठा विरशु में देवी सोमसी का सोमसी विरशु तथा कोन्हा विरशु में रूपी क्षेत्र के हवाई, श्याह, नीणू, कामांद के विरशु मेले प्रसिद्ध हैं। इन मेलों की विशिष्टता में नारी नृत्य की मन-मोहकता के दर्शन प्रमुख है। इस अवसर पर मात्र महिलाएं आकर्षक परिधानों में लुडी, बांठडा, चरासे-तरासे नामक नृत्यों की लय पर नाचती है और पुरुष नृत्य स्थल पर मात्र दर्शकों के रूप में सम्मिलित रहते हैं। विरशु के लोक-गीतों में इन मेलों के प्रति जन-मानस के गहरे लगाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। यथा –

कोण्डी रा ढोल बाज़ला भाणा,
विरशु नौचदै जाणा।
जाणा ता जा मेरियै धीयै,
खाणा ता खा खिचड़ु घीयै।

इस गीत में नव-विवाहित लड़की जो मायके में आई है अपनी मां से कह रही है - मां! जैसे कोट कण्डी की पर्वत चोटी पर ढोल और भाणा वाद्य-यन्त्रों से मोहक ध्वनि प्रसृत होती है, वैसे ही विरशु का सम्मोहक मेला लगा है। मेरा मन विरशु में नाचने को कर रहा है। इस पर मां कहती है कि बेटी! जाने की चाह है तो शौक से जाओ। स्वादिष्ट खिचड़ी और घी जाने से पहले अवश्य खा लेना।'' विरशु के मेले इसी रूप में कुल्लू के साथ सटे हुए जिला मण्डी के बालू सनोर क्षेत्र में भी मनाऐ जाते हैं।

कुल्लू शहर के सुलतानपुर बाजार के पीछे की पहाड़ी पर लगभग तीन किलोमीटर दूर देवी

भेखली के मन्दिर में संक्रान्ति के दिन वृषभ (बैल) पूजन की प्रथा है। कहा जाता है कि पहले बैल का पूजन प्रति वर्ष होता था परन्तु अब यह परम्परा देवी भेखली और देवता सारी नारायण की देवाज्ञा के अनुसार सात-आठ वर्षों के अन्तराल में एक बार निभाई जाती है। इस प्रथा में देवता सारी नारायण की ओर से प्रजनन शक्तिपूर्ण एक स्वस्थ बैल जो कि यथा-विधि पूजन होता है और तदोपरान्त उसे गो-वंश वृद्धि के लिए मुक्त छोड़ दिया जाता है। यह विरश बेरोक-टोक जहां-कहीं जा सकता है। लोग इसे रोटी का टुकड़ा, गुड़, घास आदि बड़ी श्रद्धा के साथ खिलाते हैं। कूल्लू शहर में आज भी कभी कोई विशालकाय सांड निर्मुक्त घूमता हुआ दीखे तो वह निश्चित रूप से यहीं 'विरश' होता है। आसाम प्रान्त में भी बिहु के त्यौहार के अवसर पर बैल पूजन का विधान पाया जाता है। यहां वैशाख संक्रान्ति के दिन बैलों को नहला धुलाकर पूजन किया जाता है। बैल के प्रति मंगल कामना व्यक्त करते हुए कहा जाता है –

लाओ खा, बैंगन खा, बछरि बढ़ि जा।
मार हरू, बपार हरू, तई हबि बर बर गरू।।
अर्थात् - ''लौकी खा, बैंगन खा, वर्ष प्रतिवर्ष बढ़ता जा।
मां छोटी, बाप छोटा, तू बन जा बड़ा मोटा।।''

वृषभ पूजन की इन प्रथाओं में दृष्टिगत विरशु मेले का सम्बन्ध एवं इस शब्द की व्युत्पति वृषभ से ही प्रतीत होती है।

शिमला, सिरमौर तथा किन्नौर में यह त्यौहार विशु नाम से प्रसिद्ध है। किन्नौर के रिब्बा ग्राम का प्रसिद्ध विशु पहली तथा दो वैशाख को मनाया जाता है। पहली वैशाख का विशु जनता का मेला माना जाता है। इसे 'बड़ा विशु' के नाम से जाना जाता है। दो वैशाख के 'राजौ विशु' अर्थात् राजा का विशु होता है। पहले दिन रिब्बा का देवता स्किबा गांव में जाता है। वहां दिन-भर नाचने गाने का कार्यक्रम चलता है। शाम को देवता वापिस रिब्बा लौट आता है। दूसरे दिन राजौ विशु को 'केत' नाम के वृक्ष की टहनियों एवं पत्तियों से देवता का रथ बनाया जाता है। बाद में इस देवता को मेले में नचाते हैं। उस समय युवक-युवतियां देवता की टहनियां छीना-छपटी में निकाल लेते हैं और उनसे हंसी मजाक में एक-दूसरे को मारते हैं। कुल्लू में गड़सा घाटी के नीणू विरशु में ऐसी ही प्रथा प्रचलित है। वहां नगाल की लकड़ियों तथा बुरास के फूलों से 'विट्ठ' नामक देवता का रथ बनाते हैं। उसे भी देव प्रांगण में विधिवत् लाया जाता है। यहां पर लोग बुरास फुल छीनने के लिए छीना-झपटी करते हैं और इस प्रकार रथ को नष्ट कर देते हैं। इस रथ की टहनियां एवं फूल प्राप्त करना सौभाग्य सूचक समझा जाता है। किन्नौर चगांव के विशु में देवता के कारदार की नयी नियुक्ति होती है। यहां प्रत्येक चौथे वर्ष विशु के दिन 'बल' मनाया जाता है। बल में मन्दिर से सब पुराने देव हथियार बाहर निकालकर साफ किए जाते हैं। उसके बाद पुरुषों के दो दल बन जाते हैं और यह दल परस्पर बनावटी रण प्रदर्शन करते हैं।

शिमला और सिरमौर के विशु मेलों में भी रण कौशल का प्रमुख प्रदर्शन होता है। इस रण

कौशल प्रदर्शन को ठोडा कहते हैं। इस सम्बन्ध महाभारत काल से जोड़ा जाता है। ठोडा खेलने के क्षेत्र– 'जुब्बड़' अर्थात् दूब भरे मैदान में दोनों ओर से योद्धा इकट्ठे होते हैं। एक पक्ष 'शाठी' और दूसरा पक्ष 'पाशी' कहलाता है। शाठी को कौरव के वंशज और पाशी को पांडव वंशज माना जाता है। एक पक्ष जुब्बड़ से दूसरे पक्ष को एक ऊंची आवाज लगाकर ललकारता है –

''अट्टे मेरेया ठोडेया .... ।''
(वाह! मेरे ठोडे..... ।)

दूसरा पक्ष प्रत्युत्तर में उतनी ही ऊंची आवाज लगाकर कहता है –

''गुरु पूजा तेरे जुब्बड़ों दा.... ।''
(ठोडा मैदान, (जुब्बड़) में तेरा गुरु पहुंच गया है ...)

ऐसे ही उत्तर प्रत्युतर के क्रम में एक-दूसरे को चुनौतियां दी जाती हैं। बाद में तीर-कमान के साथ ठोडा का खेल चलता है। जिस में प्रहार और बचाव का कौशल दर्शनीय होता है। लोगों का विशु मेले के प्रति कितना गहरा चाव रहता है। यह लोकगीत की अग्र पंक्तियों में स्पष्ट है –

असो बोलो जुब्बड़ो जाणा,
विशु बोलो मेले रा हामों चाओ।
शाठी बोलो पाशी रे खुंदो,
बाज़े बोलो गाजे सित्त आओ।

अर्थात् चलो! हम जुब्बड़ चलेंगे। विशु मेला देखने का हमें बहुत चाव है। शाठी-पाशी के दोनों पक्ष वहां बाजे-गाजे की धूम-धड़ाक के साथ पहुंचेंगे।

विशु का त्यौहार चम्बा, मण्डी, कांगड़ा, बिलासपुर आदि क्षेत्रों में 'बसोआ' के नाम से विख्यात है। मण्डी में इसे 'लाहौला मेला' तथा कागड़ा में 'रली मेला' भी कहते हैं। यह नाम भिन्नता कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के जुड़ाव से उत्पन्न हुई है। विश्लेषणामक दृष्टिकोण से मौलिक रूप में यह मेले विशु या बसोआ ही हैं। जनश्रुति है कि मण्डी में 'लाहौला' नामक कन्या का विवाह उसके माता-पिता ने किसी अनमेल वर से सुनिश्चित कर दिया। कांगड़ा के कथा प्रसंग में लाहौला के स्थान पर 'रली' नामक कन्या का नाम आता है। अन्य वृतान्त दोनों क्षेत्रों में एक जैसा है। कन्या इस विवाह का विरोध करती रही पर माता-पिता को मनवाने में वह सफल न हो सकी। तब पराजित मन कन्या ने आत्महत्या कर ली। इस आत्महत्या से सारा क्षेत्र दैवी -शक्ति का कोप-भाजन हुआ। कोप निवारणार्थ प्रायश्चित रूप में देव-आज्ञा से नया वर्ष प्रारम्भ होने पर कन्या के नाम से मेला लगवाने की परम्परा स्थापित की गई। कालान्तर में 'लाहौला' और रली को देवी पार्वती का रूप माना गया और इनका पूजन शिव-पार्वती पूजन से प्रसिद्ध हो गया। इस परम्परा में गांव की कन्याओं द्वारा फाल्गुन के मासान्त में गोबर, मिट्टी, रूई व लकड़ी से तीन मूर्तियां बनाई जाती है। जिनमें एक लाहौला या रली का प्रतीक पार्वती, दूसरी उनके पति सैंकर की जो शिव रूप में माने जाते हैं। तीसरी मूर्ति 'वस्तु' नाम से अभिहित लाहौला एवं रली के भाई की मानते हैं। पूरे चैत्र मास में तीनों मूर्तियों की प्रतिष्ठित स्थान पर पूजा की जाती है। वैशाख संक्रान्ति को शिव-पार्वती का विवाह किया जाता है। मंडी के लक्ष्मी

नारायण मन्दिर, पिंगला में इस अवसर पर प्रीतिभोज का भी आयोजन होता है। विवाह की रस्म पूरी करने के पश्चात् मूर्तियों को जलाशय में विसर्जित किया जाता है। इस विसर्जन विदाई बेला में बड़े मार्मिक गीत गाए जाते हैं। मंडी में लाहौला गीत में लाहौला के वियोग की पीड़ा रूप में व्यक्त हुई है –

बसोये रा ध्याड़ा बापुआ हो,
जुगा जुगा याद रैहण मेरेया बापुओ हो,
बसोये रा ध्याड़ा बापुआ हो।
पारलीया धारा ते तिन्न जणे उत्तरे,
आई गई रे लाहौला रे रबारे बापुआ हो,
बसोयै रा ध्याड़ा बापुआ हो।
न्हाई ता धोई लाहौला खूब सजाई हो,
सभ गहणे पहनी लाहौला सुहागण बणाई हो,
मुकी जांदै सारे चाओ, मेरे आ बापुआ हो,
बसोये रा ध्याड़ा बापुआ हो,
एकी पासे लाड़े री पालकी जे सजदी,
दूजे पासे लाहौला री अर्थी जे सजदी,
आझूंआ दे बगी जांदे हड़ बापुआ हो,
बसोये रा ध्याड़ा बापुआ हो।
जुगा-जुगा याद रैहण मेरेया बापुआ हो,
बसोये रा ध्याड़ा बापुआ हो।

इस लोकगीत में लाहौला का पिता के प्रति सम्बोधन है – मेरे बापू! संक्रान्ति बसोऐ का दिन युग-युग याद रहेगा। पार की धार से तीन आदमी उतरे, उन्होंने लाहौला के विवाह सम्बन्धों को जोड़ा। विवाह के लिए लाहौला का हार-श्रृंगार किया गया परन्तु उसके तो इस अनमेल विवाह से सारे चाव समाप्त हो गए। अतएव उसने अपनी जान खो दी। एक ओर जहां वर की सुखपाल सजायी जा रही थी तो दूसरी ओर लाहौला की अर्थी सजायी जाने लगी। उस समय सारा वातावरण शोकमग्न हो गया। लोग आंसू भर-भर कर रोने लगे। मेरे बापू! ऐसा यह बसोये का दिन युगों-युगों तक याद रहेगा।

बसोआ के त्यौहार वैशाख संक्रान्ति के दिन अनेक स्थानों पर पर्व-स्नान की भी समृद्ध परम्परा पाई जाती है। 'तत्तापाणी' तथा 'मार्कण्डेय' तीर्थ स्थलों पर असंख्य श्रद्धालु इस अवसर पर स्नान करते हैं। मंडी और शिमला के कुछ भागों तथा बिलासपुर एवं सोलन में बसोआ के दिन शक्कर-चीनी का शर्बत लोगों को पिलाना पुण्य-कर्म समझा जाता है। एक प्रथा के अनुसार इन क्षेत्रों में जल में भरे कलश में कुछ सिक्के डालकर तथा उस पर भल्ले, ऐंकलू व बबरू आदि पकवान रखकर कलश पूजन किया जाता है। बाद में यह पकवान नव वर्ष की मंगल कामना की भावना से अन्य दान सामग्री के साथ ब्राह्मणों को भेंट किए जाते हैं।

चम्बा जनपद में बसोआ का त्यौहार चैत्र-वैशाख मास में मनाया जाता है। १५ चैत्र को रानी सूही के मेले के साथ ही यहां बसोआ प्रारम्भ होता है। जैसा कि लोक गीत से स्पष्ट है –

आया बसोआ आया, सूहीयां लगियां,
मैं सूहीयां देखण जाणा हो।

अर्थात् ''मां! बसोआ आ गया है। सूही के मेले चल पड़े हैं। मां! मैंने सूही मेले देखने जाना है।

बसोआ का मुख्य त्यौहार यहां भी वैशाख संक्रान्ति के दिन मनाया जाता है। इस दिन 'धी-बेटिया' अपने-अपने मायके में पहुंच कर कोदरे के आटे के विशेष पकवान 'पिंदड़ी' को बड़े चाव एवं स्नेह भाव से ग्रहण करती है। गांव-गांव में प्रांगण इस दिन 'घुरेही' नृत्य से झूम उठते हैं। कुल्लू के विरशु नृत्य की भान्ति चम्बा के घुरेही नृत्य में मात्र महिलाएं ही भाग लेती है। बसोआ के त्यौहार के लिए सब महिलाएं अपने मायके जाने की तैयारी कर रही है परन्तु, सास के विमुख व्यवहार के कारण एक नव-विवाहिता वधू की मायके जाने की आस टूट जाती है। मायके ले जाने में सहायता करने के लिए वह मां से भाई या पिता को उनके पास बसोआ का बुलावा देने को भेजने का अनुरोध करती है। परन्तु भाई के बहुत छोटा होने एवं पिता के वृद्ध होने के कारण मां इन्हें भेजने में विवशता व्यक्त करती है। ऐसी स्थिति में उसके सुसराल में ही किसी के हाथ 'पिंदड़ी' का पकवान पहुंचाया जाता है। सास ने यहां भी अपनी कठोरता दिखाई। उसने पिदड़ियां तो स्वयं खा लीं और जिन पत्तों में पिदड़ियां रखी गई थी, वे पत्ते बहू को दिये। यह नव वर्ष के उल्लास का त्यौहार है। इस त्यौहार के लिए एक ओर मन में मायके जाने का अथाह चाव है और दूसरी ओर सास की यातना है कि मायके न जाने की विवशता आ खड़ी है। ऐसी पीड़ा की अनुभूति से किसका हृदय नहीं पसीजेगा? दुर्भाग्य से जिन बहन-बेटियों के भाई या मां-बाप इस लोक में न रहे हों, उनके हृदय पर भी ऐसे मेले-त्यौहारों में क्या गुजरती होगी? बसोआ का प्रमुख लोक-गीत इन्हीं मर्म पीड़ा के भावों को अभिव्यक्त करता हुआ बसोआ के अवसर पर चम्बा के गांव-गांव, घर-घर में गाया जाता है –

आया बसोआ अम्मा पंजे सते,
मिंजो सादा न आया कोई हो।
आया बसोआ अम्मा पंजे सते,
भाऊआ जो भेजे सदुआरा हो।
भाऊ तो तेरा धीए निक्का याणा,
आप्पु ईणा, आप्पु बाणा हो,
आया बसोआ अम्मा पंजे सते,
बापू जो भेजी सदुआरा हो।
बापू तो तेरा धीए बिरध सियाणा,
आप्पु ईणा, आप्पु जाणा हो।
पिंदड़ी ता भेजी माए, आया बसोआ,
बसोए दा सादा न कोई हो।
पिदड़ी ता पिंदड़ी माए, आप्पु खाए,

पिंदड़ी दे पट्टे मिंजो दित्तो हो।
जिन्हां भैणा दे माए, भाई मरे,
सेह रोदियां, आंगण दुआरा हो।
जिन्हां धीयां दे मरे अम्मा-बापू,
सेह, रोदियां मेले तिहारा हो।

मन की अथाह गहराई को स्पर्श करती ऋतु-चक्र के लुभावने वातावरण के आगोश में तरंगित लोक-गीतों की यह स्वर-लहरियां विशु-बसोआ के मेले-त्यौहार का महत्त्व एवं लोक-मानस के साथ इस त्यौहार के गहन तादात्म्य सम्बन्धों को व्याख्यायित करती है। समग्र लोक मानस इस त्यौहार में बड़े उत्साह एवं चाव से सम्मिलित होता है और यहीं से स्फूर्ति अर्जित करके वर्ष भर की व्यस्ताओं में लीन हो जाता है।

एक दुर्गम गांव की यात्रा

पहाड़ों के अनन्त प्राकृतिक सौन्दर्य की दर्शन पिपासा से हज़ारों पर्यटक प्रतिवर्ष हिमाचल प्रदेश के भ्रमण पर आते हैं। पहाड़ों की रमणीयता का आकर्षण हमारे मन-मस्तिष्क पर भी स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। परन्तु इससे कहीं अधिक, इन पहाड़ों की ओट में बसे जन-जीवन का समीपता से साक्षात्कार छायाकर्मी श्री बीरबल शर्मा की योजना के अनुसार अगस्त १९९२ के अन्तिम सप्ताह में हमारा एक पदयात्री दल बड़ा भंगाल के परिभ्रमण पर गया।

कांगड़ा जिला का एक दुर्गम गांव बड़ा भंगाल संभवतः इस समय हिमाचल प्रदेश का सबसे अधिक दुर्गम गांव है। इस गांव में पहुंचने के लिए कांगड़ा से ७१ किलोमीटर पैदल चलना पड़ता है। मार्ग में धौलाधार पर्वत श्रृंखला के बीच थमसर जोत का दर्रा आता है जहां बारह महीने बर्फ पड़ी रहती है।

२७ अगस्त, १९९२ को हम निश्चित कार्यक्रम के अनुसार मण्डी से चले। माण्डव्य कला मंच के प्रधान कुलदीप गुलेरिया और शिव राम शर्मा प्रातः ही बीड़ के लिए प्रस्थान कर गए थे। बीड़ में इन्होंने यात्री दल के अन्य सहयोगी भगवान सिंह ठाकुर से मिल कर आगे की व्यवस्था सुनिश्चित करनी थी। मैं और साथी बीरबल शर्मा दोपहर बाद दो बजे मण्डी से चले और शाम पांच बजे बीड़ पहुंचे। वहां हम पांचों साथी इकट्ठे हो गए।

बड़ा भंगाल छोटा भंगाल और बीड़ भंगाल तीन भागों में विभक्त भूतपूर्व भंगाल रियासत की राजधानी यहीं बीड़ में थी। कुल्लू, मण्डी और कांगड़ा के पड़ोसी राजाओं के साथ संघर्ष करते हुए कभी इस राज्य की सीमाएं सिमटती और कभी फैलती। किसी भी प्रकार से अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक इसका अस्तित्व बना रहा। यहां का अन्तिम शासक मानपाल दिल्ली जाते हुए मारा गया था। उसकी विधवा रानी नवजात शिशु निहाल पाल के साथ चम्बा नरेश राजसिंह की शरण में गई। बाद में राजा राजसिंह जब संसार चन्द राजा कांगड़ा के हाथों मारा गया, उस समय संसार चन्द ने भंगाल रियासत को भी कांगड़ा में मिला लिया। भारत संघ में विलय तक भंगाल कांगड़ा राज्य का हिस्सा रहा और बाद में जिला कांगड़ा का हिस्सा बना।

मण्डी जिला के सुख्यात कमरूनाग देवता को एक जनश्रुति में भंगालिया राजा कहा जाता है। कमरूनाग को 'रत्नजच्छ' (रत्नयक्ष) भी कहते हैं। बीड़ से ५ किलोमीटर दूर पहाड़ी पर स्थित रत्नगढ़ नाम का प्राचीन किला इस जनश्रुति को पुष्टि प्रदान करता है। रत्नगढ़ में हनुमान देवता का मन्दिर है। बीड़ से दो किलोमीटर की दूरी पर बाड़ी में 'जयमल देवता' का मन्दिर है। लोग जयमल को कुल्लू के

देवता जमलू के रूप में मानते हैं जिनका सम्बन्ध वैदिक ऋषि जमदग्नि से जोड़ा जाता है।

सामान्यतः लोग बड़ा भंगाल के लिए बीड़ से ही पैदल यात्रा प्रारम्भ करते हैं। वैसे यहां से बिलिंग तक १४ किलोमीटर जीप योग्य सड़क बनी है। हमारा इस दिन कड़धार तक पहुंचने का विचार था, इसलिए जीप की व्यवस्था कर रखी थी। शाम साढ़े पांच बजे हम ने बीड़ से जीप में यात्रा प्रारम्भ की। अभी लगभग दो किलोमीटर का सफर शेष रहता था कि बरसात के दिनों में पहाड़ों की आम त्रासदी यहां भी झेलनी पड़ी। भूस्खलन से आगे सड़क बन्द थी। जीप से उतरना पड़ा और पैदल यात्रा शुरू कर दी। बिलिंग हम शाम के सात बजे पहुंचे। मौसम अभी तक मिला-जुला चला हुआ था पर यहां पहुंचते ही वर्षा ने जोर पकड़ लिया। विवश होकर हमें वहीं वन-विभाग के विश्राम-गृह में शरण लेनी पड़ी। यह विश्राम गृह नाम का ही विश्राम गृह है। इस का प्रयाोग रेशम के कीड़े पालने के फार्म-हाउस के रूप में हो रहा है। फिर भी रेशम उद्योग के कर्मचारियों के सहयोगपूर्ण व्यवहार की सराहना करनी होगी। जितना इन से हो सकता था, इन्होंने सुविधा उपलब्ध करवाने का प्रयत्न किया। सीमेंट के फर्श पर बिछाने के लिए बोरियां मिल गई। बोरियां बिछा कर हमने बिस्तर खोल के लगा दिए। अनुरोध पर कर्मचारियों ने खाना भी खिला दिया। हालांकि, बिलिंग हैंग-ग्लाईडिंग के लिए विश्व मानचित्र पर उभर आया है पर उस ख्याति का यहां के विकास पर कोई प्रभाव नहीं दिखता।

२८ अगस्त १९९२ बिलिंग विश्राम गृह में हमने सुखद रात काटी। सुखद इसलिए कि यदि हम इससे आगे जाते तो रात के अंधेरे और बारिश में बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ता। २८ अगस्त को प्रातः हम साढ़े छः बजे बिलिंग से चले और दो घंटे की चढ़ाई चढ़कर सलैतर पहुंचे। सलैतर में चैहना माता के मन्दिर में माथा टेका तथा छोटी सी चाय की दुकान में चाय पीकर आगे की राह ली। अब आगे पलाचक तक वन विभाग की बनी सड़क पर चढ़ाई का आभास नहीं होता। लगभग ११:०० बजे हम कड़धार में पहुंचे। वहां भिच्छुराम के घर में कुछ जानकारी के लिए रुके। भिच्छु बातचीत में बहुत दबंग, खुले मिजाज का व्यक्ति है। भिच्छु के घर घंटा भर गप्प-शप और चायपान के बाद हम आगे जाने को बाहर निकले तो वर्षा ने ज़ोर पकड़ लिया था। हमारे पास छतरी, बरसाती आदि पूरा इन्तजाम था। इसलिए हमने आगे जाने का विचार बना लिया ताकि राजगुन्धा में भोजन कर सके। भिच्छु कहने लगा रुको भोजन यहीं करो। तब भी हमने जाने की इजाज़त चाही तो वह हमारी संकोचमयी मनोस्थिति को भांप कर बोला, तुम ने यदि पैसे देकर होटल में ही खाना खाने की सोच रखी है तो यहीं खाने के पैसे दे देना। संकोच का निराकरण होने पर हम रुके। उन्होंने बड़े प्रेम से भोजन खिलाया। यह तो हम जानते थे कि भिच्छु ने पैसे की बात मजाक में कही है। तब भी हमने उन्हें पैसे देने का प्रयास किया, परन्तु उन्होंने साफ शब्दों में इन्कार करते हुए कहा कि भाई! होटल नहीं, घर है। हमें बाप-दादों की सीख मिली है, अपना हो या कोई परदेसी, भोजन खिलाने से बड़ा धर्म होता है। पैसे लेकर हम पाप के भागी नहीं बन सकते। भिच्छु के इन शब्दों में भारतीय संस्कृति में निहित 'अतिथि देवो भव' की शाश्वत भावना का स्पष्ट प्रवाह विद्यमान था। सचमुच संस्कृति की यह शाश्वत

भाव धारा पर्वतीय जन मानस को आज भी आलोकित करती है।

कड़धार से २.३० बजे कर थोड़ी ही देर में हम राजगुन्धा पहुंचे। राजगुन्धा बिलिंग से १२ किलोमीटर दूर है। कहते हैं कि बंगाल के पालवंशी शासकों का एक परिवार सैकड़ों वर्ष पहले राजगुन्धा में आकर रहने लगा। अठाहरवीं शताब्दी में जब मण्डी नरेश सिद्धसेन ने षड्यन्त्र रचकर भंगाल के राजा पृथ्वी पाल को मार दिया तो उस से राज्य में मची उथल-पुथल के बीच यह परिवार यहां से जाकर लाहौल घाटी में जा बसा। लाहौल के गोन्धला ठाकुर यहीं के निवासी हैं।

राजगुन्धा से दो किलोमीटर आगे कुकड़गुन्धा है और वहां से सात किलोमीटर पर है पलाचक। पलाचक में वन विभाग का विश्राम गृह है लेकिन, अच्छी स्थिति में नहीं। कड़धार में भिच्छुराम ने पलाचक और कुकड़गुन्धा के बीच देवता अजयपाल से जुड़ी एक लोकश्रुति सुनाई थी। देवता अजयपाल की पूजा आज पूरे भंगाल क्षेत्र में प्रचलित है। जिला कुल्लू के महाराजा क्षेत्र में भंगाली खानदान के लोग रहते हैं। पीज गांव में इनके वीर देवता का मन्दिर है। यहां के भंगाली अपने को भंगाल से आया हुआ मानते हैं और अपने वीर देवता को अजयपाल वीर के नाम से पूजते हैं। जिस प्रकार कुल्लू में देवी हिडिम्बा दानवी से देवी बनी है, उसी प्रकार वीर अजयपाल दानव से देवता बने हैं। श्रद्धालु इनकी आराधना में कहते हैं - देऊ दाणी, तू यै जाणी, अर्थात् दानव देवता, तू कृपा रखना।' यहां दाणी शब्द की व्युत्पत्ति दानव शब्द से संभावित है इसे लोकश्रुति का आधार पुष्ट होता है।

अजयपाल देवता की लोकश्रुति में बताया जाता है कि बीड़ के समीप टिक्करी गांव में हिरदू नामक एक अलौकिक शक्तिमान् व्यक्ति रहता था। यह बड़ा भंगाल का मूल निवासी था। वहां उसका घर और जमीन थी। वह समय-समय पर जमीन के काम से वहां जाता था। जब वह बीजाई कि लिए वहां जाता तो एक खार (वर्तमान तोल के अनुसार लगभग पांच क्विंटल) बीज एक दिन में बिना हल चलाये पैर की खुरी से बीजता था। उसी दिन वापसी पर पलाचक में कुल्हाड़े से सौ तख्ते पछान कर रात होने तक टिक्करी पहुंचता था। उसी दिन उसकी घर वाली उसके पैर से एक पत्था (डेढ किलो) कांटे निकालती थी और एक सेर तेल की मालिश करती थी। एक बार उसकी पत्नी स्वस्थ नहीं थी तो उसने पुत्रवधू को ससुर के कांटे निकालने और मालिश करने को कहा। पुत्रवधू केवल आधा पत्था कांटे निकाल पाई और केवल आध सेर तेल की मालिश कर पाई। हिरदू उस के बाद जब फसल बोने बड़ा भंगाल गया तो वह आधी खार बीज ही बो पाया कि खुरी में दर्द हो गई वह आधी खार फसल बीज का एक खार भलेस नामक अनाज उठा कर भंगाल से चल पड़ा। पलाचक पहुंच कर वह तख्तों का पछान करने लगा। अभी वह पचास तख्ते ही पछान कर पाया था कि वह थक गया। थक कर उसने वहीं रुकने का विचार किया। शाम की रोटी ' बियाली' के लिए वह सिल-बट्टे से भलेस पीसने लगा। उसने आधी खारी भलेस पीस ली थी, उतने में दानव अजयपाल निकल आया। नाक से हूं-हूं कर सूंघता हुआ कहने लगा कि यहां मानस की बास (गन्ध) आ रही है। हिरूद ने भी नाक से हू-हूं की और बोला कि यहां किसी दानव की बास आ रही है।

अजयपाल ने समझा यह कोई खास आदमी है। वह सामने प्रकट हुआ और बोला भाई तू मेरी जगह पर यहां कैसे? मैं तुम्हें खा जाऊंगा।'' हिरदू ने बड़े सहज भाव से कहा 'ठीक है पहले रोटी खा लेते हैं। उसके बाद तुम मुझे खा लेना या मैं तुम्हें खा लूंगा। अजयपाल मान गया। हिरदू ने आधी खारी भलेस की रोटी पकाई। दोनों ने आधी-आधी रोटी खाई। रोटी खाने के बाद हिरदू ने कहा – आधी पींग झूठ कर भोजन हज़म करते हैं, एक दूसरे को खा लेते हैं। अजयपाल सहमत हो गया। हिरदू ने पास खड़े देवदार वृक्ष का सिरा झुकाया पींग झूटने लगा। थोड़ी देर बाद उसने वृक्ष का सिरा अजयपाल को थमा दिया। अजयपाल ने सिरा पकड़ा और झटके के साथ सिरा सीधा हो गया। वह उस सिरे को नवा न सका और वृक्ष की चोटी पर फंसा रह गया। रात खुलने को आई। वह हिरदू से कहने लगा तू कृपा कर के मुझे नीचे उतार दे। हिरदू ने सिरा नवाया और अजयपाल को नीचे उतार दिया। नीचे उतार कर उसे पट्टू में लपेट कर हिरदू आगे चल पड़ा। वे कुकड़गुन्धा के पास एक तोस के वृक्ष के नीचे पहुंचे। वहां ऊन की धुनाई की आवाज अजयपाल को सुनाई दी, मानव-बस्ती पहुंचा जानकर तथा रात खुलने का आभास होने पर अजयपाल छोड़ने के लिए अनुनय-विनय करने लगा। जब हिरदू न माना तो अजयपाल ने प्रार्थना की कि आज से आप मेरे गुरु रहे। मैं आप की प्रत्येक आज्ञा का पालन करूंगा। अब आप मुझे छोड़ दें। तब हिरदू ने कहा कि तुम शक्तिमान हो परन्तु, अपनी शक्ति बुरे काम में लगाते हो। पलाचक में रहते हुए तुम लोगों को परेशान करते हो। भविष्य में तुम अपनी सिद्ध शक्ति अच्छे कामों में लगाओ। इससे तुम लोगों में पूजित होंगे। अजयपाल मान गए। तब से अजयपाल ने लोगों का भला करके देवता के रूप में मान्या प्राप्त की। हिरदू को भी उसकी मृत्यु के बाद पूजित पद प्राप्त हुआ। आज भी भंगाल में अजयपाल के साथ-साथ हिरदू को भी पूरी प्रतिष्ठा प्राप्त है।

पंचालक में चाय पीकर हम साढ़े चार बजे पनिहारटु की ओर बढ़े। यहां से थोड़ी-थोड़ी चढ़ाई शुरू हो जाती है। दस किलोमीटर सफर तयकर रात नौ बजे हम पनिहारटु पहुंच गए। पनिहारटु थमसर जोत की तलहटी में स्थित पड़ाव है। यहां तरपाल से ढके तीन होटल छोटा भंगाल के स्थानीय लोगों द्वारा चलाये गए हैं। यह होटल यहां प्रतिवर्ष आषाढ़ से असौज मास के बीच तीन-चार महीनों के लिए लगाए जाते हैं। हालांकि, यह होटल मात्र शरणस्थल ही हैं परन्तु यहां इनकी महत्ता महानगरीय आलीशान होटलों से कहीं अधिक अनुभव होती है। हमने एक होटल में रात विताई। होटल वाले ने बड़े प्रेम से खाना खिलाया और यथासामर्थ्य सोने की व्यवस्था की।

२६ अगस्त १६६२ : व्यास नदी की प्रमुख सहायक नदी ऊहल का उद्गम स्रोत पनिहारटू में हम पहुंचे है। धौलाधार के थमसर जोत की आर-पार की पहाड़ियों से निकली जलधाराएं उद्गम स्रोत को यहीं पर ही लगभग २०० मीटर आगे पुष्ट कर देती है। ऊहल नदी यहां से १२५ किलोमीटर की यात्रा के बाद मण्डी-कुल्लू राष्ट्रीय राजमार्ग पर मण्डी से आठ किलोमीटर दूर पिपलू-बडाणू नामक स्थान पर व्यास नदी में मिल जाती है। मार्ग में यह नदी छोटा-भंगाल और चौहार घाटी की छोटी-छोटी

नदियों को अपने में समाती हुई घोघर धार के आंचल में विशिष्ट संस्कृति का सृजन करती है। बरोट में ऊहल नदी पर बांध लगा कर ज़िला मण्डी की शानन तथा बस्सी विद्युत परियोजना जोगिन्द्रनगर अस्तित्व में आई है। इस प्रकार आधुनिक प्रगति के क्षेत्र में ऊहल नदी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आज प्रातः उठते ही हमने ऊहल नदी के उद्गम स्रोत के दर्शन किए।

बीती रात बीरबल शर्मा की तबीयत खराब हो गई। आज हमने पनिहारटू से थमसर जोत तक नौ किलोमीटर की कठिन चढ़ाई चढ़नी थी। होटल मालिक ने सुझाव दिया कि हम अपने पिट्ठू बड़ा भंगाल को सामान ले जा रहे घोड़े वालों के पास दे दें। बात सही लगी। होटल वाले ने ही एक घोड़े वाले से सम्पर्क किया और १५० रुपये में पिट्ठू ले जाने की बात बन गई। हमने अपने पिट्ठू उसे दे दिए। यहां से हमारे एक साथी भगवान सिंह ठाकुर को किसी जरूरी काम से वापिस लौटना पड़ा और आगे के लिए हम चार ही आदमी रह गए। हम साढ़े आठ बजे पनिहारटू से चल पड़े। एक तो कठिन चढ़ाई, दूसरे शर्मा जी की तबीयत ठीक नहीं, हमारी चाल काफी ढीली हो गई थीं घोड़े वाले हम से बहुत आगे निकल गए। हमें बताया गया था कि थमसर जोत एक बजे से पहले पार करना जरूरी है। उस के बाद वहां बर्फानी हवाओं का खतरा रहता है। हम थमसर जोत के दर्रे पर सवा एक बजे पहुंचे। जोत पर जिधर नज़र दौड़ाओ बर्फ ही बर्फ लगभग सोलह हजार फीट ऊंचे इस स्थल से दूर-दूर तक दृष्टिगोचर होती है – भगवान् की सृष्टि का अनन्त लीला-विलास। एक अलौकिक आनन्द के बीच हृदय से शिव-भक्ति में समर्पित लोक गीत के यह बोल स्वतः स्फूर्त होते है –

शिव कैलासों के बासी, धौलीधारों के राजा,
शंकर संकट हरणा.........

अभी हम पांच मिनट ही जोत पर रुके थे कि बर्फानी तूफान के लक्षण उभरने लगे। यह पता न चले कि जाना किधर को है। रास्ते का नामोनिशान नहीं था। ईश्वर कृपा से दो मिनट के भीतर नीचे बहुत दूर घोड़े जाते हुए नज़र आए। उसी के अनुसार हमने बर्फ पर चलना शुरू किया। बर्फ के ढलानदार विशाल मैदान के बीच कुछ देर चलने के बाद हम रास्ते से फिर भटक गए। आगे गए लोगों और घोड़ों के पैरों के निशान बर्फ पर मिट चुके थे। बड़ी मुश्किल से घोड़ों की लीद देखकर हमने रास्ता ढूंढा और फिर लीद के सहारे चलते हुए बर्फ के लगभग तीन किलोमीटर मार्ग से बाहर निकले। थमसर के दूसरी ओर से भी इतना ही बर्फ पर चलना पड़ता है पर वहां रास्ते का पता आसानी से लग जाता है जबकि इस ओर बड़ी कठिनाई रहती है। जहां बर्फ खत्म होती है, वहां एक झील है, इस में बर्फ के तोंदे तैर रहे थे। ऐसी ही झील जोत की दूसरी ओर भी है। इन झीलों को शिव जी के डल कहा जाता है।

लोक मान्यता है कि शिव जी थमसर में कैलाश की रचना कर रहे थे। तब चम्बा के मणिमहेश कैलाश का महात्म्य यहीं स्थापित होना था। वह झीलों को बना कर अपने धाम को तैयार कर रहे थे, उसी बीच मासिक धर्म में बैठी एक औरत वहां से गुजरी। उससे यह स्थान अपवित्र हो गया। तब शिव जी यहां से चले गए और मणिमहेश झील के सामने शिखर पर शिव-धाम कैलाश की

रचना की।

उस दिन हमारा बड़ा भंगाल पहुंचने का विचार था, परन्तु आज नौ किलोमीटर की चढ़ाई और नौ किलोमीटर की उतराई में चलने के बाद हमें रात पड़ गई। हमें रास्ते में ही उदग में रुकना पड़ा। उदग में भी पनिहारटू की तरह एक होटल है। मुझे थोड़ी-थोड़ी ठण्ड लग रही थी। मैं होटल में आग के पास जा के बैठा। कुछ देर बाद होटल वाले ने गर्म पानी से पैर धोने को कहा। ज्यों ही मैं पैर धोने बाहर निकला, मेरा सारा शरीर कांप उठा। मैं भीतर जाकर लेट गया। बीरबल शर्मा ने दवाई की गोली खिलाई। होटल वाले ने मेरे ऊपर दो गर्म देसी कम्बल 'दोहडू' डाले। लगभग दो घंटे में मेरे शरीर में पूरी तरह से गर्माहट आ गई और मैं लगभग ठीक हो गया। उसके बाद हम सब ने भोजन किया। तरपाल की छत वाले इन ढाबों (जिन्हें सामान्यतः लोग होटल ही कहते हैं) में सादा भोजन और ठहरने के लिए जगह मिल जाती है। बिस्तर अपने पास होना चाहिए। वैसे एक आध पट्टू-दोहडू इनकी ओर से भी मिल जाता है।

३० अगस्त १६६२ : हम प्रातः सात बजे उदग से चले और तीन घंटे में ८ किलोमीटर चलकर दस बजे हम अपनी मंजिल बड़ा भंगाल में पहुंच गए। चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों से घिरा ८००० फीट की ऊंचाई पर स्थित रावी नदी के किनारे बसा बड़ा भंगाल लगभग १०० घरों का ६५० की आबादी वाला गांव है। पहले एक ही गांव था। अब दो भागों में बंटा है। ऊपर के गांव बाद को यहां के लोग ग्रां कहते हैं और नीचे बसा गांव फाली कहलाता है। ग्रां ही प्राचीन गांव है। फाली गांव में आबाद हुआ है। कठिन परिस्थितियों में रह रहे यहां के लोग बड़े मिलनसार और मेहमाननवाज़ हैं। जब हम गांव में गये, वहां के लोगों ने बड़ी खुशी जतलाई। ऐसा नहीं लग रहा था कि हम किसी अजनबी गांव में हैं। सब कुछ अपना सा लग रहा था। वर्तमान पंचायत प्रधान श्री प्रेम दास और भूतपूर्व प्रधान श्री किरपा राम और उनसे पहले के प्रधान ७८ वर्षीय श्री दानु राम एक होकर गांव की संस्कृति तथा दुःख तकलीफों सम्बन्धी बातचीत में हमारे बीच अपनेपन के साथ शामिल हुए। यह मेलजोल बड़ा सुन्दर लगा।

वयोवृद्ध पूर्व प्रधान दानु राम ने बताया कि बड़ा भंगाल का पूरा क्षेत्र २०४ वर्गमील है। यहां सभी लोग राजपूत हैं जो समय-समय पर यहां आकर बसे हैं। अलग-अलग स्थानों से आए राजपूतों के अलग-अलग आठ खानदान हैं। भंगालिए राजपूत सब से पहले बंगाल से आकर यहां बसे। उसके बाद लाहौर से हूदिए राजपूत आए। गुमरे और सूरजवंशी मण्डी से, बगटेलर कुल्लू की लग घाटी से तथा रामपुर बुशैहर से बुशैहरी राजपूत आए। चम्बा के कुगती गांव से आए राजपूत ढाढू कहलाते हैं और कांगड़ा के थथी, संसाल तथा राजगुन्धा से आए राजपूतों को थथवाल नाम से जाना जाता है।

बड़ा भंगाल में रावी नदी के साथ कालीहाण की सहायक नदी मिलती है। रावी का उद्‌गम रई गाहर नामक स्थान से माना जाता है। उस स्थान को हनुमान का किला भी मानते हैं। लोगों का विश्वास है कि रावी नदी का नाद दूसरी नदियों से अधिक है। इस बारे में दन्तकथा है कि हनुमान

किला रई गाहर में सात देवी बहनों 'सतभाजणियों' का वास था। एक दिन सब से छोटी बहन को सोई हुई छोड़कर छः बहनें वहां से अलग-अलग स्थानों पर चली गईं। जहां वे नदी के रूप में बहने लगीं। ये नदियां गंगा, यमुना, सरस्वती, व्यास, सतलुज, और चिनाव हैं। सातवीं बहन जब जागी तो अपने आप को अकेली पाकर वह रोने-चिल्लाने लगी। कुछ देर बाद रोते हुए ही वह भी जलधारा बनकर बह निकली। इसकी यह जलधारा रावी कहलाई। रावी का नाद सातवीं बहन के रोने चिल्लाने की आवाज़ मिश्रित होने कारण अधिक है भले ही नदियों की दन्तकथा में सच्चाई न लगे पर देश के इस अछूते भू-भाग का जन-मानस को राष्ट्र की भाव-धारा के साथ गहराई से जुड़ा है, भारतवर्ष की बड़ी नदियों की जानकारी कथाओं में मिलना इस बात का प्रमाण है।

भंगाल के लोग सतभाजणी को देवी रूप में पूजते हैं। इसके अतिरिक्त लोग यहां अजयपाल, केलंग वीर, शिवशक्ति, इलाके वाली भगवती, डंगे वाली भगवती और मराली देवी के उपासक हैं। गांव में इन सभी देवी-देवताओं के मन्दिर हैं। भेड़ बकरी पालन के अपने पुश्तैनी व्यवसाय के कारण यह लोग हिमाचल के दूर-दूर के इलाकों में घूमते हैं और वहां का पूरा परिचय रखते हैं। सर्दियों में अधिकांश लोग बीड़ और बैजनाथ क्षेत्र में आकर बसते हैं। कुछ लोगों ने उधर स्थायी निवास भी बना लिए हैं।

बड़ा भंगाल के दुर्गम गांव में आयुर्वैदिक औषधालय, गार्डखाना, पटवारखाना, प्राईमरी स्कूल, आंगनबाड़ी केन्द्र और राशन का डिपो विद्यमान है। यहा कुछ वर्ष पहले महिला मण्डल का भी गठन हो गया है। श्रीमती भुगरी देवी इसकी प्रधान हैं। ये पांचवी पास हैं पर समाज सुधार और महिला कल्याण के कार्यों में विशेष रुचि रखती हैं।

यहां की जमीन अच्छी उपजाऊ है। इसमें मक्की, गेहूं, जौ, भलेस, राजमाह, आलू आदि की फसलें होती हैं। गेहूं अगस्त महीने में बीज कर बारह महीने के बाद अगस्त मास में ही काटा जाता है। मक्की सठुआ किस्म की बोते हैं, जिसकी फसल साठ दिन में तैयार हो जाती है। सेब भी बढ़िया होता है परन्तु दुर्गम क्षेत्र होने के कारण इसका व्यापारिक लाभ नहीं है।

३१ अगस्त १६६२ : आज प्रातः ही प्रस्थान करने का विचार था। प्रस्थान से पहले यहां के लोक-नृत्य की फोटोग्राफी करने की इच्छा हुई। अनुरोध करने पर इसका आयोजन किया गया। इसके लिए गांव के सभी लोग खुशी से उमड़ पड़े। यह एक प्रायोजित आयोजन न होकर स्वाभाविक मेला सा होगा। लोक-नृत्य प्रारम्भ हुआ तो आम मेलों की भान्ति पुरुष और महिलाएं बेझिझक नृत्य में शामिल हो गए। सारा बड़ा भंगाल थिरक उठा। यहां के नृत्य में चम्बा के डण्डारस और घुरई नृत्य की समानता है। गीतों में चम्बा और कांगड़ा के साथ कुल्लू के लोक गीतों का भी बहुत प्रभाव है। नृत्य में कुल्लूवी प्रभाव का गीत गाया गया –

रुणका जाई रोई रुपियै, लामण शुणी रोई।
बुन्हलै खोरचे बेशै रुपिये, रुणका जाई रोई।

अर्थात् रूपी नामक महिला छोटा भंगाल के रुणका गांव में जाकर रोयी। लामण गीतों को

सुन कर घर के कमरे के निचले किनारे की ओट में रूपी रुणका जा कर रोयी।

चम्बा और कांगड़ा की भाषा में एक गीत के बोल हैं –

तेरी बागा डुघड़ी खूहियां, छलमल न्हौणा दे।
न्हौई जांदै राजपूत, पलभर बैहण दे।

अर्थात् तेरे बाग में गहरी कुंआनुमा बावड़ियां हैं, इनमें हमें छलछलाहट के साथ खुल कर स्नान करने दे। यहां राजपूत नहाते हैं, थोड़ी देर विश्राम करने दे।

बड़ा भंगाल के लोगों में कुल्लू, कांगड़ा और चम्बा की संस्कृति का अद्भुत मिश्रण है। औरतें सामान्यतः कुल्लूवी पट्टू पहनती हैं। सिर पर गद्दी महिलाओं की भान्ति (चादरु) ओढ़ती हैं। मेले-त्यौहारों में कई महिलाएं पट्टू की जगह गद्दणों की तरह लुआंचड़ी भी लगाती हैं। महिलाएं आभूषणों की भी शौकीन हैं। आभूषण चम्बा, कांगड़ा और कुल्लू से मिलते जुलते हैं। पुरुष पारम्परिक वेशभूषा में ऊनी चोला, कमर पर काला डोरा और सिर पर पगड़ी पहनते हैं। लोगों की अपनी पुरातात्विक तथा सांस्कृतिक सम्पदा के प्रति पूरी आस्था है। मेले-त्यौहार बड़े हर्षोल्लास से मनाते हैं। नाचना-गाना लोगों के जीवन का अविभाज्य अंग है। अनेक कठिनाइयों के बीच बड़ा भंगाल के दुर्गम गांव का लोक मानस अनूठे प्राकृतिक उल्लास से भरपूर है।

भाषायी दृष्टि से बड़ा भंगाल की बोली आर्य भाषा परिवार में पश्चिमी पहाड़ी भाषा की कुल्लूवी बोली के अधिक समीप है। कांगड़ी और जिला चम्बा के जन जातीय गद्देरण क्षेत्र भरमौर की गादी बोली का भी इस बोली पर पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है तथापि, शब्दावली, वाक्य, संरचना तथा सुर आघात आदि भाषायी तत्वों की मूल प्रवृत्ति के आधार पर यही निष्कर्ष सामने आता है कि शताब्दियों पूर्व इस बोली का सीधा सम्बन्ध कुल्लूवी बोली से रहा है। प्रख्यात भाषाविद् डॉ. ग्रियर्सन ने भी लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया के खण्ड ९ भाग ४ के पृष्ठ ६६९ पर बड़ा भंगाल में कुल्लुवी बोली का मुख्य प्रभाव उल्लिखित किया है। इसके लिए कुछ सर्वनाम शब्दों पर दृष्टिपात करते हैं। जैसे सर्वनाम के मैं, हम, तू, तुम, हमारा आदि शब्दों के लिए बड़ी भंगाली और कुल्लूवी में क्रमशः हाऊं या मूं एवं मैं, आस्सै, तू, तुस्सै, अस्सारा या म्हारा आदि समान सर्वमान रूप व्यवहृत होते हैं परन्तु तुम्हारा के लिए कुल्लूवी में तुस्सारा शब्द है और बड़ी भंगाली में यहां तुधारां शब्द प्रयुक्त होता है जो कि गादी बोली का शब्द है। सहायक क्रिया 'है' के लिए कुल्लुवी और बड़ी भंगाली में 'सा' तथा बहुवचन 'है' के लिए 'सी' का प्रयोग किया जाता है। भविष्यत् काल में गा, गे, गी के लिए कुल्लूवी और बड़ी-भंगाली में ला, ले, ली का प्रयोग एक समान है। भूतकाल की सहायक क्रिया था, थे, थी के लिए कुल्लुवी की तीनों अवस्थाओं में 'थी' का प्रयोग होता है परन्तु बड़ी भंगाली में कांगड़ी और गादी बोली की भान्ति थिया और थिये का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणस्वरूप बोलचाल के कुछ वाक्य प्रस्तुत हैं -

हिन्दी	बड़ी- भंगाली
१. तेरा क्या नाम है	तेरा की नां सा।
२. मेरा नाम प्रेमदास है	मेरा नां प्रेमदास सा।

३. तुम्हारा घर कहां है?	**तुधांह घर केड़ी सा?**
४. हमारा घर बड़ा भंगाल है।	**म्हारा घौर बड़ा भंगाला सा।**
५. बीड़ से बड़ा भंगाल लगभग ७०-७१ किलोमीटर दूर होगा।	**बीड़ा गे बड़ा भंगाल कोई ७०-७१ किलोमीटर दूर होला।**
६. यहां के रास्ते में बड़ा ऊंचा थमसर पर्वत लांघना पड़ता है।	**एड़ी री बौत्ता मंझ बड़ा उथड़ा थमसर जोत लंघणा पंदा।**
७. हम सब खुश थे।	**आस्सै सारे खुश थिये।**

हमें बड़ा भंगाल में बड़ा ही आत्मीयपूर्ण व्यवहार मिला। सब कुछ अपना ही लग रहा था। ऐसे अपनेपन में गांव छोड़ने का मन नहीं था आखिर लौटना तो था ही, अतः हमने दस बजे यहां से विदाई ली। शाम छः बजे इधर से चम्बा के पहले गांव खनार पहुंचे। बड़ा भंगाल और खनार के बीच का रास्ता बड़ा विकट था। जामू टापा और भटराहण दो खतरनाक स्थल हैं। जहां चट्टान को काट-काट कर तंग सा रास्ता बना है। पीछे विशाल ढांक और आगे ढाई-तीन हज़ार फीट नीचे रावी नदी के बीच मौत सामने नज़र आती है। भौगोलिक दृष्टि से बड़ा भंगाल चम्बा में होना चाहिए था परन्तु अब स्पष्ट हुआ कि चम्बा से सम्पर्क सहज न होने के कारण यह गांव कांगड़ा में है। फिर भी यदि किसी तरह यहां सड़क बन जाए तो धौलाधार स्थित जालसु जोत के रास्ते बड़ा भंगाल तक साल में सात-आठ महीने आवागमन बना रह सकता है। आज कल थमसर जोत से केवल तीन-चार महीने ही बड़ा भंगाल बाहरी दुनिया से जुड़ा रहता है।

खनार में पंच, मोहन लाल के घर रात्रि विश्राम करने के अगले दिन प्रातः साढ़े छः बजे हमने आगे प्रस्थान किया। रास्ते में दिन को खूरडू में भोजन करके पहली सितम्बर की रात आठ बजे हम दयोल पहुंचे। दो सितम्बर को सुबह दयोल से बस द्वारा हड़सर तक मणिमहेश यात्रा के लिए रवाना हुए। रात मणिमहेश पहुंच कर तीन सितम्बर की प्रातः स्नान करके वापिस लौटकर शाम को पांच बजे भरमौर से कांगड़ा के लिए बस ली। कांगड़ा में चार सितम्बर की सुबह पहुंच कर वहां से मण्डी के लिए दूसरी बस ली और शाम को मण्डी पहुंचने पर एक अविस्मरणी यात्रा सम्पन्न की।